पैरवी संवाद

पब्लिक एडवोकेसी इनीशिएटिव्स फ़ॉर राइट्स एण्ड वैल्यूज़ इन इण्डिया

फ़रवरी 2016

इस अंक में...

2 **मानवाधिकार के लिए नई चुनौतियाँ**
- अजय के. झा

4 **बाल अपराधियों के प्रति नाराज़गी का असर**
- मैराज फ़ातिमा

7 **भारत में बीमा योजना का परिदृश्य**
- निरमा बोरा

10 **चैती की मौत से उपजे कई अनसुलझे सवाल**
- दीनबंधु वत्स

14 **जन्नत की हकीक़त: पाताल से कुछ नोट्स**
- रजनीश साहिल

17 **पेरिस समझौता: अच्छाई, बुराई और निराशा**
- अजय के. झा

संपादक मंडल
प्रो. संजय भट्ट
अजय के. झा

संपादन सहयोग
रजनीश साहिल
मैराज फ़ातिमा

डिज़ाइन
रजनीश साहिल

संपादकीय

प्रिय साथियो,

भारतीय गणतंत्र की स्थापना और मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र दोनों ही सात दशक पूरे करने जा रहे हैं। इतने लंबे अरसे के बाद भी हम देखते हैं कि मूलभूत और मानव अधिकारों की सुरक्षा के मामले में देश में भी और दुनिया में भी स्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि उन्हें ठीक कहा जा सके। उल्टे कुछ मामलों में स्थितियाँ और भी चिंताजनक होती जा रही हैं।

किसी भी देश का नागरिक अपनी सरकार से यह अपेक्षा रखता है कि वह उसके अधिकारों का संरक्षण करे। ऐसा करना सरकारों की ज़िम्मेदारी भी है। एक तरफ़ भारत समेत दुनिया के सारे देश विकास की राह पर आगे बढ़ने के आँकड़े प्रस्तुत कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ़ हम ऐसी कई ख़बरें रोज़ पढ़-सुन रहे हैं, जिनसे यह आभास होता है कि सरकारों का इस ओर गंभीरता से ध्यान नहीं है। यही बात हम अपने सामाजिक परिवेश के बारे में भी कह सकते हैं। इन दिनों पूरी दुनिया लाभ-हानि के बाज़ार में तब्दील हुई लगती है। राजनैतिक, आर्थिक, वर्चस्व आदि-आदि लाभों की ख़्वाहिश में न केवल व्यक्ति बल्कि सरकारें भी यह नहीं देख पा रही हैं कि एक इकाई के समृद्ध होने से सब कुछ दुरुस्त नहीं हो जाता।

हालिया उदाहरणों की ही बात करें तो एक तरफ़ हम अपने देश में बुलेट ट्रेन और स्मार्ट सिटी की ओर अग्रसर हैं, बड़े कॉरपोरेट्स का करोड़ों का लोन माफ़ होते देख रहे हैं और वहीं दूसरी ओर फ़सलों की तबाही और कर्ज़ के बोझ तले दबे हज़ारों किसानों की आत्महत्याएँ हमारे सामने हैं, दलितों-आदिवासियों के गाँव उजाड़ दिये जाने की घटनाएँ हमारे सामने हैं। छात्रों के अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूरे देश में बहस जारी है। हर साल सैकड़ों छात्र आत्महत्या कर लेते हैं, इसकी वजह तलाशने का सवाल हमारे सामने है।

पिछले एक दशक में विभिन्न पहलुओं पर पूरी दुनिया में जो उथल-पुथल मची है, उसने वैश्विक स्तर पर राजनैतिक समीकरणों को तो प्रभावित किया ही है, देशों की आंतरिक स्थितियों को भी प्रभावित किया है। नतीजतन, मानवाधिकार संरक्षण के सामने नयी चुनौतियाँ आ खड़ी हुई हैं।

जैसा कि हमने शुरुआत में कहा कि भारतीय गणतंत्र और मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणा-पत्र की लगभग सात दशक की अवधि बीत जाने पर भी मानवाधिकारों की स्थिति चिंताजनक बनी हुई है। इसी को पैरवी संवाद के इस अंक में अलग-अलग विषयों पर लेख शामिल करके स्पष्ट करने का प्रयास हमने किया है। आशा है कि इस प्रयास पर आपकी अमूल्य प्रतिक्रिया भी हमें प्राप्त होगी।

– संपादक मंडल

मानवाधिकार के लिए नई चुनौतियाँ

▸ अजय के. झा

मानवाधिकार पर सार्वभौमिक घोषणा पत्र को जारी किए हुए 68 वर्ष हो गए हैं। और भारत गणतंत्र की स्थापना को भी 67 वर्ष हो गए। लेकिन भारत में भी स्थिति कोई बहुत बेहतर नहीं है। विश्व में सार्वभौमिक घोषणा-पत्र और उसके लिए अधिकारों की प्रतिस्थापना का काम अभी अधूरा है। अभी विश्व में इतने प्रजातंत्र हैं जितने पहले कभी नहीं रहे, पर फिर भी राजनैतिक और नागरिक अधिकारों की पालना में काफ़ी कमी आई है। इसके साथ ही पिछले कुछ वर्षों से आई आर्थिक मंदी को छोड़ दें तो विश्व में जितनी सम्पदा है उतनी पहले कभी नहीं रही, लेकिन फिर भी बड़ी संख्या में लोग भुखमरी और बेरोज़गारी से ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं। हालाँकि यह सत्य है कि एक आदर्श समाज की परिकल्पना शायद बेमानी है। सामाजिक संरचना में अमीर, ग़रीब, और शक्तिहीन व शक्तिशाली हमेशा रहेंगे। मानवाधिकार के सिद्धांतों का उद्देश्य ही यह है कि इस विभेद और विषमता को यथासंभव कम किया जाए और समाज की शक्ति संरचना में संतुलन लाया जाए। हम ऐसा समाज और ऐसी व्यवस्था लाने में सर्वथा असफल रहे हैं। जहाँ हम पुराने परिभाषित मानवाधिकारों की स्थापना करने में जूझ रहे हैं, वहीं कई नई तरह की समस्याएँ भी मानवाधिकार की नई चुनौतियाँ बनकर उभर रही हैं।

2015 में दुनिया में तीन बड़े अंतर्राष्ट्रीय समझौते हुए। जुलाई में इथोपिया के अदिस अबाबा में देशों ने तय किया कि ग़रीब व विकासशील देशों में सतत् विकास के लिए और अधिक धन जुटाने की आवश्यकता है। सितंबर में अमरीका में राष्ट्रसंघ के नेतृत्व में 17 सतत् विकास के लक्ष्यों को अंगीकार किया और दिसंबर में पेरिस में जलवायु परिवर्तन पर एक नई संधि हुई। इन तीनों बैठकों में यह चर्चा रही कि ग़रीबी और ग़ैर-बराबरी दुनिया के विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। हालाँकि यह बात अलग है कि इसको दूर करने के लिए कई धनी देशों ने 40 साल पुराने वादे (जिसमें यह तय पाया था कि सभी देश ग़रीब देशों व विकासशील देशों में विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी सकल घरेलू आय का 0.7 प्रतिशत देंगे) को धता बता दिया। आज ग़रीबी से ख़तरनाक आर्थिक विषमता है जो ग़रीबी को और गहरा करती है। ऑक्सफ़ेम की अभी आई रिपोर्ट के अनुसार सर्वाधिक धनी 62 लोगों के पास ही दुनिया की आधी संपत्ति है। नासा के गोडार्ड सेंटर का कहना है कि विषमता की यही गति रही तो 25 से 30 साल में दुनिया की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना चरमरा जाएगी।

पिछले साल सहस्त्राब्दी लक्ष्यों पर आई रिपोर्ट का कहना है कि सहस्त्राब्दी लक्ष्यों की अवधि (2000 से 2015) के दौरान दुनिया में सवा डॉलर से कम आमदनी के लोगों की जनसंख्या में 40 से 14 प्रतिशत की कमी हुई। हालाँकि अन्य विशेषज्ञ इन आँकड़ों पर संदेह करते हैं और उनका कहना है कि इस दौरान अफ्रीका में ग़रीबी बढ़ी है और साथ ही दुनिया में आर्थिक विषमता भी बढ़ी है। उनका यह भी कहना है कि विश्व में आर्थिक विकास को अभी की गति के अनुसार दुनिया में ग़रीबों की आय को सवा डॉलर तक लाने में 100 साल और पाँच डॉलर तक लाने में 200 साल लगेंगे। सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजीज़) भी 2030 तक ग़रीबों की न्यूनतम आय सवा डॉलर तक लाने की बात करते हैं, लेकिन इसके लक्ष्यों में आपदा, तेल का स्टॉक और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से उपजी विषमता का आंकलन और अनुमान शामिल नहीं है।

ग़रीबी को सिर्फ़ आमदनी बढ़ाकर दूर नहीं किया जा सकता। जब तक यह आमदनी मूलभूत सुविधाएँ दिलाने में अक्षम हैं, ग़रीबी बनी रहेगी। निश्चय ही ग़रीबी और ग़ैर-बराबरी दूर करने के

लिए अभी के प्रयास सक्षम नहीं हैं, और ग़रीबी और ग़ैर-बराबरी के रहते एक गरिमा- पूर्ण जीवन संभव नहीं है जो कि मानवाधिकारों की पहली शर्त है। यह ग़ैर-बराबरी दुनिया के अलग-अलग देशों में विभिन्न समस्याओं के रूप में दिखती है। कहीं यह आंतरिक कलह है, कहीं आतंकवाद और कहीं सांप्रदायिक दंगों में। जलवायु परिवर्तन और आतंकवाद को आज इस सदी की मुख्य चुनौतियों में गिना जा रहा है। आतंकवाद जिसे आमतौर पर आजकल इस्लामिक आतंकवाद चस्पा किया जा रहा है, कहा जा रहा है, इसकी जड़ भी शायद ग़रीबी और ग़ैर-बराबरी से जुड़ी हुई है। पिछले साल सीरिया में हिंसा की वजह से 70 लाख लोग बेघर हो गए और 40 लाख लोग शरणार्थी हो गए। 2 लाख से अधिक लोगों की जान गई। इराक़ में शिया सरकार की शह पर हज़ारों सुन्नी समुदाय के लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। नाइजीरिया में बोकोहरम ने नाबालिग लड़कियों को अगवा कर दहशतगर्दी का एक नया नमूना पेश किया। दुनिया के सबसे नए देश दक्षिण सुडान में भी सरकार समर्थक और सरकार विरोधी हिंसा में सैकड़ों लोग मारे गए। फ्रांस में दो आतंकवादी घटनाओं में सैकड़ों लोगों की जान गई जिसने दुनिया को झकझोर दिया।

आतंकवाद के साथ जलवायु परिवर्तन को भी आने वाली सदी के लिए बड़ी चुनौती माना जा रहा है। 2015 में अल नीनो के प्रकोप के अलावा यमन और मेक्सिको में चक्रवाती तूफ़ान, उत्तरी अमरीका में गर्म आँधी, ऑस्ट्रेलिया में बाढ़ व इंडोनेशिया में दावानल की घटनाएँ हुईं। भारत में चेन्नई में आई बाढ़ ने लाखों लोगों को बेघर किया और सैंकड़ों लोग बाढ़ से अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए।

पेरिस में हुई संधि ने यह तो माना कि उत्सर्जन कम करना है और सदी के अंत तक तापमान वृद्धि 2 डिग्री सेल्सियस से कम रखनी है, लेकिन सबसे

यह कैसा अन्याय है कि धनी देश ग़रीब देशों को जितना दान देते हैं इससे पाँच गुना राशि प्रति वर्ष विकासशील और अल्पविकसित देशों से धनाढ्य देशों में जाती है।

ज़रूरी चीज़ प्राकृतिक संसाधनों का न्यूनतम दोहन और जीवाश्म ईंधन के कम से कम उपयोग पर कोई सार्थक बहस नहीं हुई। इस सदी के अंत तक तापमान वृद्धि 2 डिग्री सेल्सियस से कम पर रोकने के लिए 70 प्रतिशत जीवाश्म ईंधन के स्रोतों को पृथ्वी के गर्भ में ही रहने देना होगा। इस बात पर कोई भी देश करार करने को राज़ी नहीं है। आज मौसम परिवर्तन सिर्फ़ विकास का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह न्याय और जीवन का प्रश्न है। आसमान में उसकी क्षमता से कई गुना अधिक कॉर्बन डालने के बाद भी विश्व की एक बड़ी जनसंख्या अंधकार में और मूलभूत सुविधाओं के अभाव में जी रही हैं। यह परिस्थितियाँ मानव अधिकार के लिए नई चुनौतियाँ पेश करना है। और यह किसी दुर्घटना की वजह से नहीं है। विकास के साथ विपन्नता, एक सोचे-समझे और जानबूझकर किये गए भेदभाव की उपज है जो दुनिया में सत्ता, धन और शक्ति से परिपूर्ण समाज ने पूरी मानवता पर ढाया है। इसका एक बड़ा परिणाम प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग है। प्रकृति अभी दो साल में जितनी संपदा पैदा करती है उसका इस्तेमाल हम एक साल में ही कर देते हैं। जहाँ भारत, अमरीका और चीन दो साल की प्राकृतिक संपदा एक साल में इस्तेमाल करते हैं, ब्रिटेन चार साल की और जापान आठ साल की संपदा एक साल में खर्च कर रहे हैं। कुछ छोटे देश जैसे अरब अमीरात 13 साल की संपदा एक साल में ही खर्च कर देते हैं। निश्चय ही यह चलन भविष्य के लिए और सतत् विकास के लिए घातक है।

वैश्विक स्तर पर आर्थिक, बाज़ार, राजनैतिक और दान के ग़लत ढांचे को तोड़े बिना इससे मुक्ति संभव नहीं है। यह कैसा अन्याय है कि धनी देश ग़रीब देशों को जितना दान देते हैं इससे पाँच गुना राशि प्रति वर्ष विकासशील और अल्पविकसित देशों से धनाढ्य देशों में जाती है। ऐसी परिस्थिति में गंभीर परिवर्तन के बिना दुनिया को ग़रीबी, ग़ैर-बराबरी, आतंकवाद और जलवायु संकट से उबरने का रास्ता नहीं मिलेगा।

मानवाधिकार के लिए नई चुनौतियों में, लोकतंत्र में भी विपरीत विचारों के लिए बढ़ती हुई असहिष्णुता और सामाजिक संस्थाओं में बढ़ती हुई घेराबंदी है। गुज़रे साल में रूस ने संस्थाओं के लिए 'विदेशी जासूस' के जैसे क़ानून लाकर दुनिया को चौंकाया है। मिस्र और हांगकांग में भी संस्थाओं के दमन के कई प्रयास हुए हैं। चीन, युक्रेन, अजरबैजान आदि में भी संस्थाओं के काम करने पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाने के प्रयास किए गए हैं। बांग्लादेश में पिछले वर्ष कई स्वतंत्र व प्रगतिशील लेखकों की जघन्य हत्याएँ हुईं जिसमें कुछ सामाजिक संस्थाओं से भी संबद्ध थे। इससे जुड़ा एक और मामला अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और इसके संदर्भ में 'इंटरनेट अधिकार' भी पिछले साल गहन चर्चा में रहा। विकीलीक्स के इस खुलासे पर कि अमरीका कई राष्ट्राध्यक्षों के ईमेल की जासूसी करता है, जर्मनी की एन्जेला मार्केल सहित कई देशों ने एतराज़ जताया। भारत में भी पिछले वर्षों में कई कार्टूनिस्ट और ब्लॉगर पर इस स्वतंत्रता के दुरुपयोग का आरोप सरकार ने लगाया और कुछेक पर तो देशद्रोह का आरोप भी लगा। इसके अतिरिक्त सरकार ने स्वैच्छिक संस्थाओं पर भी घेरा कसने की कोशिश की। अगर दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में ऐसे अधिकारों पर प्रश्नचिन्ह लग सकता है तो निचश्य ही इनका संरक्षण और प्रवर्तन मानवाधिकार के लिए बड़ी चुनौती हो सकती है। ■

बाल अपराधियों के प्रति नाराज़गी का असर

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) विधेयक 2015

▸ मेराज फ़ातिमा

पिछले दिनों बाल न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम पर लोगों के बीच काफ़ी उत्साह देखने को मिला। अधिकतर लोगों ने इस नए अधिनियम का समर्थन किया। कुछ ही लोग ऐसे थे जिन्होंने इसका विरोध किया। मई 2015 में इसे लोकसभा ने पहले ही पारित कर दिया था और दिसंबर 2015 में राज्यसभा ने भी ध्वनिमत से पारित कर दिया। बहुत से ऐसे मुद्दे थे जिन पर गहन चिंतन की ज़रूरत थी, लेकिन इन सबको नज़रअंदाज़ करते हुए यह बिल से एक्ट में परिवर्तित कर दिया गया। देशभर से लोगों ने जिस तरह इसका समर्थन किया और सरकार पर एक दबाव-सा बनाया उसके बाद यह सवाल उठता है कि क्या यह क़ानून भावनाओं में बह कर जल्दबाज़ी में पारित हुआ है?

16 दिसंबर 2012 निर्भया बलात्कार मामले में एक दोषी नाबालिग था, जिसकी सज़ा दिसंबर 2015 में पूरी हो रही थी। इस नाबालिग को किशोर न्याय अधिनियम 2000 के तहत दोषी पाते हुए 3 साल के लिए किशोर देखभाल केंद्र में रखा गया था। नाबालिग को रिहा करने पर अधिकतर लोग नाराज़ थे और उसके लिए कड़ी सज़ा की माँग कर रहे थे। शायद लोगों की इस नाराज़गी को दूर करने के लिए ही इस नए अधिनियम में संसदीय समिति की सिफ़ारिशों को दरकिनार कर दिया गया। केंद्रीय सरकार ने जघन्य अपराधों के आरोपी 16 से 18 साल के किशोरवय अपराधियों पर वयस्कों के लिए बने क़ानूनों के तहत मुकदमा चलाने को मंजूरी दे दी। उस आरोपी को तो लोगों के विरोध के बावजूद रिहाई मिल गई लेकिन, अब कई नाबालिग इस राजनीति की भेंट चढ़ेंगे।

दुनियाभर में प्रतिगामी क़ानून बनाने के अनुभवों का इतिहास देखें तो भारत का यह फ़ैसला ऐसे ही क़ानूनों के इतिहास में शामिल होगा। एक तरफ़ भारत 1992 में ही बाल अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन को करार कर चुका है और दूसरी तरफ़ 16 से 18 साल के जघन्य अपराधियों को भी वयस्कों के बराबर खड़ा करके बाल अधिकारों का मज़ाक़ बनाया जा रहा है। क़रीब 150 साल पहले से बाल कल्याण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। 1850 में पहली बार यह ज़रूरत महसूस हुई कि छोटे अपराध करने वाले बच्चों को जेल न भेज कर उनके साथ नर्मी बरतनी चाहिए। इसके बाद कई क़ानूनी प्रावधान बानाए गए जिससे बाल अधिकारों को संरक्षित किया जा सके। यह नया विधेयक, 2015 किशोर न्याय अधिनियम 2000 की जगह लेगा जिसमें 2006 और 2011 में संशोधन हो चुका है। लेकिन पिछले कुछ सालों में बाल अपराधों की बढ़ती संख्या के कारण बड़ा समूह बाल न्याय अधिनियम 2000 में एक बार फिर से संशोधन की मांग करने लगा। इसमें सबसे बड़ा योगदान रहा 16 दिसंबर 2012 में दिल्ली में हुए सामूहिक बलात्कार केस का जिसका एक आरोपी 18 वर्ष से कम आयु का था। लंबी बहस के बाद इस संशोधन को मंजूरी तो मिल गई लेकिन इस फ़ैसले ने बाल अपराधियों के अधिकारों को नज़रअंदाज़ कर दिया। इस नए विधेयक के अनुसार किशोर न्याय बोर्ड (जेजेबी) और बाल कल्याण समिति देश के प्रत्येक ज़िले में बनाई जाएंगी। जेजेबी यह तय करेगा कि किशोर अपराधी को पुर्नवास गृह में भेजना है या एक वयस्क की तरह उसपर मुकदमा चलेगा। मनोविज्ञानिकों के अनुसार यह तय कर पाना कि अपराध युवक ने किशोर भावना या वयस्क भावना से किया है, असंभव है। इस परिस्थिति में शायद जेजेबी का निर्णय व्यक्ति-परक होगा और असके ग़लत होने की पूरी संभावना है।

पिछले दिनों मीडिया में भी बाल अपराधियों के मामले तेज़ी से बढ़ते हुए दिखाए गए हैं लेकिन अगर तथ्यों के आधार पर देखें तो स्थिति कुछ और ही है। माना भारत में जुर्म में संलिप्त नाबालिगों

की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, साल 2012 में जहाँ 27,936 किशोर आपराधिक मामलों में शामिल थे, वहीं 2013 में यह संख्या बढ़कर 31,725 हो गई और 2014 में यह संख्या 33,526 तक पहुँच गई। इन आँकड़ों को देखें तो लगता है जैसे इस संशोधन के लिए जो तर्क दिए जा रहे थे वह ठीक थे। नाबालिगों द्वारा क्रूर अपराध, ख़ासकर बलात्कार जैसे अपराध, बढ़ रहे हैं। लेकिन असल में देखें तो 2013 में नाबालिगों द्वारा बलात्कार के कुल 1388 मामले ही थे जिसमें 16 से 18 वर्ष के बच्चे शामिल थे, यानि पाँच प्रतिशत से भी कम। और अगर पिछले सालों से तुलना करें तो 2012 में नाबालिगों द्वारा 3.7 प्रतिशत बलात्कार के मामले दर्ज हुए और 2013 में भी 3.7 प्रतिशत ही रहे। फरवरी में स्थाई समिति की एक रिपोर्ट ने भी बाल अपराधियों के लिए सख़्त सज़ा का विरोध करते हुए कहा था कि भारत के राष्ट्रीय अपराधों के आंकड़ों को देखों तो 2012 से 2013 के कुल अपराधों में से केवल 1.2 प्रतिशत अपराध ही बाल अपराधियों द्वारा किए गए हैं। इतने छोटे अनुपात के लिए सख़्त सज़ा देने के बजाए उन्हें सुधारने पर ध्यान देना चाहिए। सरकार के अपराध के आंकड़ों के अनुसार 80 प्रतिशत बाल अपराधियों के परिवार की वार्षिक आय पचास हज़ार से भी कम है और 50 प्रतिशत से अधिक बाल अपराधियों ने प्राथमिक शिक्षा भी हासिल नहीं की है।

इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बाल अपराधियों के लिए किसी भी सख़्त सज़ा के बजाय उनके सुधार पर ध्यान देने की ज़रूरत है। लेकिन सरकार ने इस संशोधन के लिए जो तर्क दिया वह देख के लगता है जैसे इन बच्चों के सुधार को लेकर सरकार को कोई चिंता ही नहीं है। सरकार ने बाल अपराधियों की उम्र घटाने को लेकर दूसरे देशों के उदहारण दिए हैं। महिला एवं बाल विकास मंत्री, मेनका गांधी ने आस्ट्रेलिया और इंग्लेंड का उदाहरण देते हुए कहा कि इन देशों में बाल अपराधियों की उम्र 10 वर्ष तय की गई है। अर्जेंटीना में यह आयु 16 और फ्रांस में 13 है। उनका कहना था कि आजकल बच्चे जल्दी और कम उम्र में मेच्योर हो रहे हैं इसलिए आपराधिक ज़िम्मेदारी की उम्र को समय के साथ बदलते रहना चाहिए।

2014 में बाल अपराधियों द्वारा किए गए बड़े जुर्म

चोरी	20 प्रतिशत
बलात्कार	5.9 प्रतिशत
गंभीर चोट	4.7 प्रतिशत
स्त्री अस्मिता को चोट पहुँचाने के इरादे से किए गए अपराध	4.7 प्रतिशत
अतिचार और चोरी	7.6 प्रतिशत

स्रोतः NCRB

मेनका गांधी ने जिन देशों से तुलना की क्या वहाँ उम्र घटाने के बाद आपराधिक मामलों में कोई कमी आई? अमरीका के अनुभव बताते हैं कि बाल अपराधियों को वयस्क न्याय प्रणाली में भेजना बाल अपराधों में सुधार के लिए अप्रभावी रहा और न ही इससे सार्वजनिक सुरक्षा में सुधार हुआ। विशेषज्ञों की भी राय थी कि भारत की किशोर न्याय प्रणाली प्रगतिशील है जिसे प्रतिगाामी नहीं बनाना चाहिए। बाल अपराधियों को अगर वयस्क अपराधियों के साथ रखा जाता है तो उनके सुधार की बहुत कम ही उम्मीद बचती है।

नए बिल की कमियाँ

- किशोर मानसिक रूप से एक वयस्क की तरह मुकदमे की पेचीदगियाँ समझने में परिपक्व नहीं होता।
- देशभर में अभी भी सभी ज़िलों में किशोर न्याय की व्यवस्था नहीं है। ऐसे में इसका अनुपालन करना कठिन होगा।
- आँकड़े सिर्फ़ किशोरों के ख़िलाफ़ दर्ज एफ़आइआर पर आधारित हैं और ऐसे मामलों में किशोर को अपराधी मान लेना सही नहीं है।
- कथित क़ानून, न्याय के एक महत्वपूर्ण सिद्धांत 'जब तक दोष सिद्ध नहीं होता, आरोपी निर्दोष है' के ख़िलाफ़ है।
- इस क़ानून में जघन्य अपराधों की श्रेणी में 40 से अधिक अपराध आते हैं। जिसमें आतंकवाद निरोधी क़ानून, मकोका, देशद्रोह, डकैती इत्यादि हैं। ऐसे अपराधों में किशोर से वयस्क की तरह व्यवहार करना उचित नहीं है। इससे बाल संरक्षण प्रणाली कमज़ोर होगी।

बाल अपराधियों के ख़िलाफ़ दर्ज हुए मामले

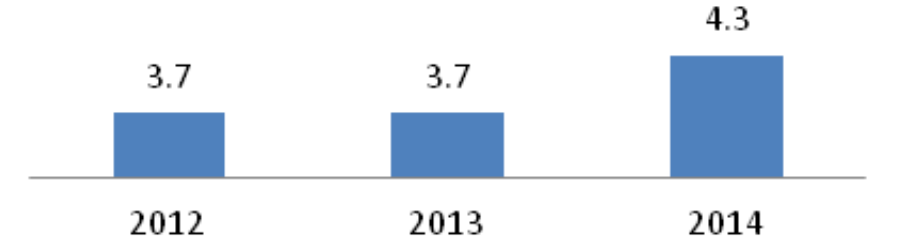

स्रोतः NCRB

इससे अपराधों में कमी के बजाय उनके द्वारा बड़े अपराध करने के अवसर बढ़ जाते हैं। जेल में बड़े और ख़तरनाक अपराधियों के बीच रहने के बाद बाल अपराधियों को वापस समाज की मुख्य धारा में लाना मुश्किल हो जाता है। इस विषय पर हुए कई अध्ययन भी बताते हैं कि जिन किशोरों को वयस्क जेलों में रखा जाता है उनके आगे चलकर हिंसक अपराध में लिप्त होने की संभावना बढ़ जाती है, जबकि अगर किशोर न्याय प्रणाली के तहत बाल अपराधियों को रखा जाए तो उनके सुधार की संभावना अधिक होती है। इसका एक उदहारण 2013 में मजनूं का टीला की एक घटना है। यहाँ रिमांड होम के किशोरों और सुरक्षा कर्मियों के बीच दुर्व्यवहार को लेकर बड़ी हिंसक घटना हुई थी जिसमें किशोरों का हिंसक रूप दिखा। मीडिया में भी किशोरों की जेलों की स्थिति और बाल अपराधों को रोकने की अक्षमता पर चर्चा रही। लेकिन यह तथ्य सामने नहीं आया कि हिंसक घटना को अंजाम देने वाले वह बाल अपराधी तिहाड़ जेल से कुछ दिन पहले ही यहाँ लाए गए थे।

असल में यह हमारे समाज की ही कमी है कि हम अपने बच्चों को सही माहौल नहीं दे पा रहे। बाल अपराधियों को सख़्त सज़ा देकर कहीं न कहीं हम अपनी कमी को छुपाना चाह रहे हैं। एक तरफ़ हम जनसुरक्षा के लिए इन अपराधियों को सज़ा दिलवाने की बात करते हैं लेकिन दूसरी तरफ़ इन नाबालिगों को बेहतर ज़िन्दगी देने की ज़िम्मेदारी से भाग रहे हैं। बाल अपराधियों को क़ैद में रखने का मक़सद उन्हें सज़ा देना नहीं बल्कि समाज की मुख्य धारा में वापस लाना था। इसी उद्देश्य से किशोर गृह भी बने। लेकिन अपर्याप्त बजटीय आवंटन के कारण यह गृह अपने लक्ष्य हासिल करने में नाकाम रह जाते हैं। आवंटन की कमी की वजह से गृहों में न तो मूल व्यवस्था ठीक है और न ही पुनर्वास हो पाता है। अगर पिछले दस सालों का औसत देखें तो भारत संघ ने सौ में से केवल तीन पैसे ही बाल संरक्षण को दिए हैं।

गलियों और बस स्टॉप पर भीख माँगते बच्चों को देखकर हमारा दिल नहीं पिघलता, कूड़े के ढेर में काम करते बच्चों को देखकर हमारी चिंता नहीं बढ़ती, ठंड की रातों में रोड के किनारे लेटे बच्चों को देखकर हम गुज़र जाते हैं, कम उम्र के बच्चों को नशा करते देखते तो हैं लेकिन कुछ करते नहीं। और जैसे ही किसी अपराध में कोई किशोर पकड़ा जाता है हमारा पूरा समाज उसके लिए कड़ी सज़ा की माँग करने लगता है, लोग विरोध के लिए सड़कों पर उतर आते हैं, उस बच्चे के प्रति क्रोध की भावना जाग जाती है। लेकिन क्या हमारी ज़िम्मेदारी इन बाल अपराधियों को सज़ा दिलाने तक ही है। दोषियों को सज़ा देने के बजाय इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आख़िर यह बच्चे इस आपराधिक दुनिया में गए क्यों? सुरक्षित समाज के लिए ज़रूरी है कि ग़रीबी, बेरोज़गारी, शिक्षा की कमी जैसे विषयों पर ध्यान दिया जाए और बच्चा अपराध करने के लिए क्यों मजबूर हुआ, उन कारणों को सुधारा जाए। बाल गृहों में व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाए और कौशल विकास पर ज़ोर दिया जाए ताकि इन गृहों से निकलने के बाद वह एक नया सभ्य जीवन गुज़ार सकें।

नये बिल में क्या

- जघन्य अपराधों में 16 से 18 साल के अपराधियों को वयस्क माना जाएगा और उन पर 21 साल के होने के बाद वयस्कों जैसे ही केस चलेगा।
- जघन्य अपराधों में वह ही अपराध शामिल किए गए हैं जिन्हें भारतीय दंड विधान संगीन अपराध मानता है। इनमें हत्या, बलात्कार, फ़िरौती के लिए अपहरण, देशद्रोह, तेज़ाब हमला आदि शामिल हैं।
- देश के हर ज़िले में किशोर न्याय बोर्ड (जेजेबी) और बाल कल्याण समिति बनाने का प्रावधान है।
- जेजेबी में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विशेषज्ञ होंगे जो फ़ैसला करेंगे कि अपराध एक बच्चे की तरह किया गया है या नहीं और उसे पुर्नवास गृह में भेजा जाए या वयस्कों की तरह केस चलाया जाए।
- बच्चों के साथ दरिंदगी करने, बच्चों को ड्रग्स देने या बच्चों को अगवा करने/बेचने के अपराध में सज़ा वही रहेगी जो पहले थी।

संदर्भ:
http://indianexpress.com/article/india/crime/75-of-juveniles-in-2014-were-between-16-18-years-of-age/
http://hindi.sputniknews.com/asia/20160115/1017055340/Juvenille-Juctice-Bill--India.html
http://www.thehindu.com/news/national/35465-juveniles-arrested-under-ipc-in-2012/article4869193.ece
http://www.thehindu.com/opinion/op-ed/misunderstanding-rape-condemning-juveniles/article6309522.ece
http://www.newindianexpress.com/states/tamil_nadu/NCRB-Report-1316-Juveniles-Booked-for-Rape-in-2012-Alone/2013/06/17/article1638450.ece
http://www.prabhatkhabar.com/news/Delhi/juvenile-justice-bill-passed-rajya-sabha-punishment-7-years-imprisonment-heinous-offences/673790.html

भारत में बीमा योजना का परिदृश्य

▸ निरमा बोरा

बाढ़ और सूखा अब असामान्य नहीं, सामान्य क्रम हैं। जब इंसान अपनी मर्ज़ी से चल कर पर्यावरण को नज़रअंदाज़ कर रहा है तो प्रकृति भी अपनी मर्ज़ी की मालिक हो गई है। बादल कभी बरस कर ढेर सारी बारिश कर किसी भी इलाके को डुबा देते हैं तो कभी बरसने से इंकार कर नदी, नहर, और खेतों को सूखा कर देते हैं। इंसान और पर्यावरण के इस स्वकेंद्रित मनोभाव से सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ है देश का अन्नदाता, यानि किसान। फ़सल नष्ट होने पर न तो वह सेठ-साहूकारों का कर्ज़ चुका पाता है और न ही बीमा कंपनियों से मुआवज़ा प्राप्त कर पाता है। विडंबना तो यह है कि मुआवज़े से वंचित केवल वह किसान ही नहीं रहते जिनका बीमा नहीं हुआ हो बल्कि बीमित किसान तक भी मुआवज़े की रक़म नहीं पहुँच पाती। मौसम की बेरहमी से फ़सल नष्ट हो जाए तो सरकार और बीमा कंपनियाँ मुआवज़ा देना तो दूर, सुध तक नहीं लेती। किसी प्रभावशाली हस्ती की कृपा पा कर जिन किसानों को भुगतान मिलता भी है तो वह सही समय पर व पर्याप्त नहीं मिल पाता। इस दोहरी नीति से किसानों में रोष है।

ज़मीन से जुड़ी वास्तविकताएँ

भारत में कृषि बीमा योजना की शुरुआत कुछ 30 वर्ष पहले हो गयी थी। इन सभी योजनाओं का उद्देश्य प्राकृतिक आपदाओं, कीटों, और रोगों से हुई अधिसूचित फसलों की विफलता में किसानों को बीमा कवरेज और वित्तीय सहायता प्रदान करना था। सन् 2000 से बीमा योजना का लाभ, अधिसूचित क्षेत्रों में अधिसूचित फ़सल उगाने वाले ऋणी और गैर-ऋणी दोनों प्रकार के किसान ले सकते हैं। सभी किसान बीमा के तहत कवरेज के पात्र हैं। जहाँ केसीसी धारक ऋणी किसानों को फ़सल बीमा कराना अनिवार्य होता है वहीं ग़ैर-ऋणी किसान, जिसने सरकारी ऋण नहीं ले रखा, को लम्बी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। उन्हें प्रस्ताव फॉर्म भरके, प्रीमियम राशि और बोयी गयी फ़सल का सबूत कट-ऑफ तारीख़ से पहले निकटतम कमर्शियल बैंक, या क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, या प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की शाखा में जमा करना पड़ता है। परन्तु, विभिन्न फ़सलों की बीमा सीमा और लागू प्रीमियम दर तय करने वाला सरकारी आदेश ही कट-ऑफ डेट के बाद जारी होता है। उत्तर प्रदेश के महाराजगंज ज़िले में किसान इस समस्या का कई बार सामना कर चुके हैं, जिसके कारण उनकी फ़सल का बीमा होने से रह जाता है।

पैरवी की टीम ने उत्तर प्रदेश के महाराज गंज और फ़ैज़ाबाद ज़िले में किसानों से पूछताछ की तो पता चला कि कई बार फॉर्म भरने की प्रक्रिया किसान को समझ ही नहीं आ पाती और यदि वो फॉर्म भर के प्रीमियम जमा भी कर दें, तो बैंक की शाखा फॉर्म वेरिफिकेशन की लम्बी प्रक्रिया से बचने के लिए किसान का प्रस्ताव फॉर्म रिजेक्ट कर देती है। फॉर्म रिजेक्शन के कुछ मामलों में तो प्रीमियम की राशि किसान तक वापस भी नहीं पहुँच पाती, । किसानों का कहना है कि राशी बैंक का कोई कर्मचारी खा जाता है।

कभी-कभी अच्छी जान-पहचान होने के कारण बैंक बीमा के आवेदन को जल्दी मंजूरी दे देता है। लेकिन आवश्यक नहीं कि हर बीमित किसान प्रीमियम का भुगतान कर पाए। 2010 से चली आ रही परिवर्तित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (MNAIS) के तहत किसानों द्वारा भुगतान की जाने वाली प्रीमियम दरें 2–15 प्रतिशत रखी गयीं, हालाँकि उच्च जोखिम वाली फसलों और क्षेत्रों के आधार पर, बीमांकिक प्रीमियम[1] 57 प्रतिशत तक रखा गया।[(i)] योजना अनुसार, यदि बीमांकिक प्रीमियम

1 आमतौर पर फ़सल के नुक़सान का अनुमान उस फ़सल के पिछले सालों के नुक़सान और जोखिमों के अनुभावों के आधार पर तय किया जाता है। सटीक बीमांकन दर तय करने से बीमा कंपनियों को प्रीमियम बढ़ाने का मौका मिल जाता है। और कंपनियां भविष्य में हानेवाले भारी नुक़सान के समय दिवाला होने से बच जाती ह

दर कैप दर[2] से अधिक होता है, तो बीमा राशि भी उसी अनुपात में कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश के ललितपुर ज़िले में, ख़रीफ 2014 के लिए, धान का बीमांकिक प्रीमियम 22 प्रतिशत तय हुआ, लेकिन प्रीमियम पर 11 प्रतिशत कैप लगने पर बीमित राशि और प्रीमियम उसी अनुपात में कम हो गयी। ऊपर उल्लेख किये गए मामले में कैप दर, बीमांकिक प्रीमियम दर का आधा है, तदनुसार बीमित राशि भी आधी हो गयी और प्रीमियम दर भी। बीमा योजना की कुछ ऐसी ही पेचीदा नियम और शर्तों में फँसकर, कम पढ़े-लिखे किसानों को फ़सल बीमा का पूरा लाभ नहीं मिलता। नुक़सान की एक वजह ये भी है कि किसान हर फ़सल के मौसम में बोयी जाने वाली फ़सलों की जानकारी बैंक में जाकर सही समय पर अद्यतन नहीं करते जिससे बैंक उन्हें उसी फ़सल का मुआवज़ा देती है जो उनके प्रारंभिक आवेदन फॉर्म में लिखा रहता है। कितनी बार तो ख़राब मौसम के कारण फ़सल नुक़सान को सरकार रिपोर्ट ही नहीं करती ताकि वह मुआवज़े की प्रक्रिया से बच जाए या जनता के प्रति जवाबदेह न रहे।

पिछले वर्ष, जब 15 राज्यों में बेमौसम बारिश और ओले पड़ने से रबी की फ़सल ख़राब हुई, तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्राकृतिक आपदा से फ़सल बर्बाद होने वाले किसानों के लिए मुआवज़ा राशि बढ़ाई। मुआवज़ा पाने के लिए दावे करने के नियमों में भी ढील दी गई। तब उन किसानों को भी मुआवज़ा मिलने लगा जिनके ब्लॉक में कम से कम 33 प्रतिशत फ़सल का नुकसान हुआ हो। इससे पहले यह सीमा 50 प्रतिशत थी। अप्रैल 2015 की बेमौसम बारिश के बाद कृषि के विभिन्न मदों में आवंटित अनुदान नीचे दी गई तालिका के अनुसार रहे।[(ii)]

खेती की लागत को देखते हुए यह मुआवज़ा बिलकुल भी पर्याप्त नहीं था। यहाँ तक कि, फ़सल नुक़सान के आकलन की इकाई तब भी ब्लॉक ही रखी जिस वजह से कई किसानों को अपने ब्लॉक में हुई औसत फ़सल नुक़सान का ही मुआवज़ा मिला, भले ही उसके अपने फ़सल क्षेत्र में कई गुना ज़्यादा नुक़सान हुआ हो। यह मुख्य कारण है कि भारत में किसान फ़सल बीमा योजना का लाभ लेने के लिए उत्साहित नहीं रहते।

भारत में बीमा योजनाओं की असफलता

फ़सलों को होने वाले प्राकृतिक जोखिमों को कम करने के लिये भारत सरकार ने सन् 1985 से तमाम कृषि बीमा योजनाएँ चलाई हैं । वर्ष 1985 में, प्रमुख फ़सलों के लिए संपूर्ण जोखिम व्यापक फ़सल बीमा योजना (Comprehensive Crop Insurance Scheme) शुरू की गई थी। तत्पश्चात् 1999–2000 में इसका स्थान राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (National Agriculture Insurance Scheme) ने लिया जो 2010–11 में परिवर्तित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (Modified National Agricultural Insurance Scheme) में बदल गई। मूलतः एनएआईएस का प्रबंधन जनरल इंश्योरेंस कंपनी द्वारा किया जाता था। बाद में इस योजना के कार्यान्वयन के लिए एक नए निकाय नामतः एग्रीकल्चर इंश्योरेंस कंपनी ऑफ इंडिया की स्थापना की गई। परन्तु, 2014 में सरकार ने परिवर्तित योजना को तत्काल बंद करने का फैसला किया।

इन योजनाओं का मूल्यांकन करने हेतु वर्ष 2015 में एसोचैम और स्काईमेट की ओर से पूरे देश में कृषि बीमा सर्वेक्षण कराए गए। सर्वेक्षण में यह बात सामने आई है कि महज़ 19 फ़ीसदी किसान ही ऐसे हैं जिन्होंने अपनी फ़सल का बीमा कराया है। जबकि 81 फ़ीसदी किसान बीमा कराने की प्रक्रिया से वाकिफ़ ही नहीं थे। जिन 81 फ़ीसदी किसानों ने फ़सलों का बीमा नहीं कराया है उनमें 46 फ़ीसदी किसान ऐसे हैं जो बीमा कराने में रुचि नहीं रखते, जबकि 24 फ़ीसदी किसानों के पास बीमा कराने के लिए कोई सुविधा ही नहीं है। जबकि 11 फ़ीसदी किसान ऐसा मानते हैं कि वे बीमा की किश्त नहीं चुका सकते। ये तथ्य किसानों के लिए अब तक बनाई गयी बीमा योजनाओं का ख़राब परिणाम तो सामने लाते ही हैं, साथ-साथ ये सवाल भी खड़ा करते हैं कि क्या फ़सल बीमा की तमाम योजनाएँ वाकई किसान के काम आऐंगी।[(iii)]

इस वर्ष के प्रारम्भ में केंद्र सरकार ने बाढ़, सूखा, तूफ़ान और दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की मार झेल रहे किसानों को सहायता देने के लिए प्रधानमंत्री फ़सल बीमा योजना की घोषणा की है। नई योजना मौजूदा राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एनएआईएस) और परिवर्तित एनएआईएस की जगह लेगी। पिछली सरकारों में जो दो फ़सल बीमा योजनाएँ शुरू की गई थीं,

2 कैप दर एक तरह का ब्याज़ दर है, जिसमें उतार चढ़ाव हो सकता है, लेकिन यह दर ब्याज़ कैप से अधिक नहीं होना चाहिए। प्रीमियम भी कम ज़्यादा हो सकता है लेकिन कैप दर से अधिक कभी नहीं हो सकता)।

कृषि के विभिन्न मदों में नुक़सान के बाद आवंटित अनुदान

नुक़सान	अप्रैल 2015 से पहले अनुदान की राशि (रुपये में)	अप्रैल 2015 के बाद अनुदान की राशि (रुपये में)
असिंचित भूमि	4,500/हैक्टेयर	6,800/हैक्टेयर
सिंचित भूमि	9,000/हैक्टेयर	13,500/हैक्टेयर
गाय, भैंस की मृत्यु	16,400/पशु	30,000/पशु
भेड़, बकरी, सुअर की मृत्यु	1,650/पशु	3,000/पशु

स्रोतः naiduniya.jagran.com

सरकार नए-नए प्रयोग करने में लगी है। नयी फ़सल बीमा योजना लागू करने से पहले केंद्र सरकार ने देश के किसानों का विचार लेना भी उचित नहीं समझा।

उनका कवरेज मात्र 23 प्रतिशत दर्ज हुआ था।[iv] इसके अलावा गृह मंत्री राजनाथ सिंह के अनुसार इन बीमा योजनाओं में कई तरह की विसंगतियाँ भी थीं जिन्हें दूर करने हेतु नयी फ़सल बीमा योजना शुरू हुई। सरकार का अनुमान है कि नयी फ़सल बीमा योजना में 50 प्रतिशत से अधिक किसान शामिल हो जाऐंगे। इसके लिए बीमा प्रीमियम का 90 प्रतिशत से अधिक हिस्सा केंद्र व राज्य सरकारें वहन करेंगी।[v] किसानों को ख़रीफ़ फ़सलों के लिए 2 प्रतिशत, रबी फ़सलों के लिए 1.5 प्रतिशत तथा बागवानी फ़सलों के लिए 5 प्रतिशत की दर से प्रीमियम देना होगा। पूरे देश में एक फ़सल के लिए एक ही दर लागू होगा और फ़सल की अनुमानित लागत के मुआवज़े में कोई कटौती नहीं की जाएगी। फ़सलों के नुक़सान का आकलन नई तकनीक सेटेलाइट के माध्यम से किया जाएगा। पटवारी व अन्य मैन्युअल आकलन में कई शिकायतें मिलती रही हैं, भविष्य में ऐसी शिकायतों से निजात मिलेगी। इसके लिए उड़ान नाम से भी एक अन्य योजना पर काम चल रहा है। नई योजना जल भराव व अन्य कारणों से फ़सलों की बुवाई न हो पाने पर भी बीमा के माध्यम से नुक़सान की भरपाई करेगी। इसके अलावा फ़सल काटने के उपरांत अगर 14 दिनों के अंदर-अंदर अन्य प्राकृतिक आपदाओं से काटी हुई फ़सल को नुक़सान होता है तो भी यह बीमा में कवर होगी।

योजना की समीक्षा से कुछ बातें सामने आयीं हैं वो इस प्रकार हैं-

1. सस्ती बीमा दरों का लाभ बड़ी संख्या में किसानों को मिल पाएगा और प्रीमियम पर कोई कैप/सीमा नहीं लगेगी यानि पिछली 2 योजनाओं से हट कर इस योजना में बीमांकिक प्रीमियम दरों पर कैपिंग का प्रावधान हटा दिया गया है क्योंकि इससे बीमा राशि काफ़ी घट जाती थी। कैपिंग के हटाने से किसान पूर्ण बीमा राशि का दावा करने में सक्षम होगा।

2. यादि किसानों के लिये समान प्रीमियम रहेगा और शेष प्रीमियम राशि (50:50 अनुपात के आधार पर) राज्य और केंद्र सरकार को चुकानी होगी, तो तीन साल में 50 प्रतिशत किसानों के लिए बीमा कवरेज का लक्ष्य प्राप्त करने योग्य लगता है। हालाँकि, बहुत कुछ राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा अपने हिस्से का समय पर भुगतान करने पर निर्भर करेगा। सरकारों की ओर से भुगतान में देरी, किसानों को भुगतान में देरी करेगी जिससे योजना प्रभावी नहीं बन पाएगी।

3. बीमा इकाई अभी भी प्रशासनिक इकाई ब्लॉक, मंडल, न्याय पंचायत आदि पर आधारित है। इस तरह की एक बड़ी बीमा इकाई के साथ, व्यक्तिगत खेत स्तरों पर नुक़सान का आकलन कभी सटीक नहीं बैठता। इसका मतलब यह हुआ कि कुछ किसानों को उनके नुक़सान की तुलना में कम पैसे मिलेंगे और कुछ को ज़्यादा। किसानों का कहना है कि जब तक फ़सल ख़राबी का आकलन खेत को इकाई मानकर नहीं किया जाएगा, तब तक किसान को न्याय नहीं मिल सकेगा।

4. ज़्यादातर किसान जो किरायेदार (खेतिहर मज़दूर हैं या जिन्होंने लीज़ पर भूमि ले रखी है) बीमा का लाभ नहीं उठा पाऐंगे क्योंकि उनके पास किसी एक विशेष भूमि पर खेती के दस्तावेज़ ही नहीं हैं। ये इस योजना की एक बड़ी ख़ामी है जो खेतिहर मज़दूर को नुक़सान की भरपाई लेने का लाभ नहीं प्रदान कर रही।

निष्कर्ष

अब, जब ये बात साफ़ है कि मौसमी अनिश्चितता आगे भी बनी रहेगी, फ़सल नुक़सान पर किसानों के हितों का संरक्षण करना सरकार का दायित्व है। परन्तु सरकार आज तक बीमा योजना के नाम पर नए-नए प्रयोग करने में लगी है। नयी फ़सल बीमा योजना लागू करने से पहले केंद्र सरकार ने देश के किसानों का विचार लेना भी उचित नहीं समझा। सरकार नयी योजना को इस साल ख़रीफ़ सत्र से लागू करने जा रही है, लेकिन इसके पहले योजना के प्रचार-प्रसार का अभियान चलाकर, देशभर के किसानों के मध्य योजना के प्रति जागरूकता उत्पन्न करनी होगी। साथ ही प्रशासन, बैंक व बीमा कंपनी को भी अपनी भूमिका ज़िम्मेदारीपूर्ण तरीके व पारदर्शिता से कार्यान्वित करनी होगी।

संदर्भ:

(i) http://indiatoday.intoday.in/story/crop-insurance-scheme-falters-as-farmers-pay-high-premium/1/568049.html

(ii) http://mnaidunia.jagran.com/chhattisgarh/raipur-raipur-news-384028

(iii) http://www.thenewagereporter.com/view-news.php?id=68

(iv) http://www.ndtv.com/india-news/new-crop-insurance-scheme-that-reaches-out-to-farmers-gets-cabinet-nod-1265415

(v) http://naidunia.jagran.com/national-union-cabinet-approves-fasal-beema-yojana-627162

चैती की मौत से उपजे कई अनसुलझे सवाल

▸ दीनबंधु वत्स

चैती देवी की मौत ने हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष न सिर्फ़ कई सवाल खड़े किए हैं बल्कि सरकारी दावों की पोल भी खोल कर रख दी है। तीन बच्चों की माँ चैती देवी (35) की मौत संदिग्ध परिस्थितियों में बिहार के वैशाली ज़िला के निकट पुरखोली पंचायत के समसपुरा गाँव में 19 जनवरी को हो गई थी। यह ख़बर 21 जनवरी को स्थानीय मीडिया के माध्यम में सामने आई।

चैती का घर, जहाँ उसने आख़िरी साँसें लीं

चैती समसपुरा में अपने मौसेरे भाई देवलाल मांझी के घर रहती थी। देवलाल और उनकी पत्नी रेखा देवी तीन-चार दिनों के लिए घर से बाहर गए हुए थे। घर में खाने-पीने का कोई सामान नहीं था। देवलाल का कहना है कि वह पड़ोस के शम्भू मांझी को चैती की देखभाल करने के लिए कह कर गए थे। चैती पिछले कुछ दिनों से बीमार थी। गाँव वालों ने बताया कि उसे दमा की बीमारी थी। ठंड का मौसम भी था और इस दौरान घर में खाने-पीने का कुछ सामान भी नहीं था। बीमारी की हालत में अकेले बिना भोजन के रहना शायद चैती के लिए मौत का सबब बन गया। लोगों से बातचीत के दौरान विरोधाभासी तथ्य सामने आए। शम्भू मांझी ने बताया कि उसने चैती और उसके साथ रह रहे दोनों बच्चों को तीनों दिन खाना खिलाया जबकि चैती के सगे भाई बोधी मांझी ने बताया कि वह शम्भू को खाना बनाने के लिए आवश्यक सामान देकर गया था। वहीं गाँव के पत्थल मांझी ने बताया कि सोमवार रात जब वह चैती को देखने गया तो वह घर में बेहोश पड़ी थी और उसके दोनों बच्चे रो रहे थे। इस ठंड के मौसम में उनके पास ओढ़ने के लिए कंबल तक नहीं था। वह घर के फटे-पुराने कपड़े ओढ़े हुए थी। पत्थल मांझी के अनुसार उसने दोनों बच्चों को खाने के लिए पानी में भीगा हुआ चूड़ा दिया। लेकिन चैती की हालत इस हद तक ख़राब थी कि वह आँख भी नहीं खोल पा रही थी। इन विरोधाभासी बयानों से प्रतीत होता है कि चैती को खाने के लिए ठीक से कुछ नहीं मिल सका। तीन दिनों तक उसने क्या खाया यह भी स्पष्ट नहीं है। बीमारी और ठंड का प्रभाव भी खाली पेट ज़्यादा दिखता है। लिहाज़ा दयनीय हालात में रह रही अभावग्रस्त चैती की मौत हो गई।

सामाजिक आर्थिक विषमता को झेल रही चैती के साथ भेदभाव मरने के बाद भी कम नहीं हुआ। चैती की मौत की ख़बर स्थानीय प्रखंड प्रमुख पार्वती देवी की मौत की वजह से दब गई। गाँव के लोग पार्वती देवी के अंतिम संस्कार में शामिल होने चले गए थे। चैती का शव घर में ही पड़ा रह गया। बाद में मामला प्रकाश में आया। चैती के मौसेरा भाई देव मांझी को गाँव आने में दो दिन लग गए।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

चैती की शादी विदुपुर थाना के बरांटी गाँव में जगेश उर्फ़ धरफ़री मांझी से हुई थी। उसका पति विक्षिप्त था। चैती अपने दोनों बेटों मंजय मांझी (12) और संजय मांझी (4) तथा बेटी प्रीति कुमारी (2) के साथ अपने मैके परमानन्दपुर टोला में अपने माता-पिता के साथ रहने लगी। इस दौरान उसका पति भी घर छोड़कर चला गया। अपने माता-पिता के मरने के बाद चैती मैके छोड़कर पास के ही समसपुरा गाँव में अपने मौसा हीरा मांझी के घर रहने लगी। हीरा मांझी के मरने के बाद चैती को देखने वाला उसका मौसेरा भाई देवलाल मांझी ही बचा। वह भी चैती की मृत्यु से तीन दिन पहले बाहर चला गया था। पारिवारिक रूप से चैती बिल्कुल अलग थलग पड़ गई थी। उसका बड़ा बेटा मंजय झारखंड में मज़दूरी करता है। चैती की इस पारिवारिक पृष्ठभूमि से स्पष्ट हो रहा है कि उसे अपने बच्चों की परवरिश का बोझ उठाना भी काफ़ी मुश्किल पड़ रहा था। उसके अपने बदलते रहे और ठिकाना भी बदलता रहा। बहरहाल वह चार-पाँच वर्षों से पिता के

मरने और पति के छोड़ने के बाद समसपुरा गाँव में ही रह रही थी।

चैती की मौत के बारे में पूछने पर गाँव की राधा देवी कहती हैं कि ठीक से भरपेट भोजन उसे नहीं मिलता था जिसके कारण वह मर गई। सरकारी राहत के नाम पर ज़िला प्रशासन से अभी तक मात्र 6 हज़ार रुपये मिले हैं जिसमें कबीर अंत्येष्टि योजना के तहत 3 हज़ार रुपये शामिल हैं। चैती के बच्चों का भविष्य अंधकार में लग रहा है। हालाँकि चैती पिछले कुछ वर्षों से समसपुर में रह रही थी। वह किसी भी सरकारी योजना की लाभार्थी नहीं बन पाई। उसके नाम से राशन कार्ड नहीं था। गाँव में आंगनवाड़ी केन्द्र होने के बावजूद चैती के दोनों बच्चों को पोषाहार नहीं मिल पाता था। गाँव के लोगों ने बताया कि आँगनवाड़ी केन्द्र में बच्चों का पोषाहार मज़ाक बन गया है। अतिकुपोषित बच्चों को जहाँ 4 किलो चावल और 2 दाल मिलना चाहिए, उसका आधा भी ठीक से नहीं मिल पाता है। गाँव में एक उत्क्रमित मध्य विद्यालय हैं जहाँ इस गाँव के 160 बच्चों का नामांकन है, पर टोले से 15 – 20 बच्चे ही जा पाते हैं।

उत्क्रमित मध्य विद्यालय, समसपुरा में अवस्थित आँगनवाड़ी केन्द्र (केन्द्र संख्या - 180) का अवलोकन करने पर पाया गया कि दिन के एक बजे उस केन्द्र पर सिर्फ 18 बच्चे थे और मानक के विपरीत पानी वाली खिचड़ी पक रही थी। मौके पर उपस्थित लाभार्थी महिलाओं ने बताया कि उनके बच्चों को पोषाक की राशि नहीं मिलती है, पोषाहार कभी-कभी मिलता है तथा गर्भवती व धात्री माताओं को मिलने वाला टेक होम राशन भी समय पर व नियमित नहीं मिलता है। सेविका व सहायिका ने बताया कि बाल विकास परियोजना पदाधिकारी कार्यालय से समय पर राशि का आबंटन नहीं होता हैं। यह भी देखा गया कि उस दिन उत्क्रमित मध्य विद्यालय, समसपुरा में भी मध्यान्ह भोजन नहीं बना था। अविभावक व बच्चों ने कहा कि यहा कभी-कभी मध्यान्ह भोजन मिलता है। मुसहरी तथा मल्लाह टोला के बच्चे पढ़ने भी नहीं आते हैं। फिर भी उसके नाम का मध्यान्ह भोजन बँट जाता है।

प्रशासन का रवैया

चैती की मौत की ख़बर स्थानीय मीडिया में आने के बाद, प्रशासन अपनी ज़िम्मेदारी से बचने का प्रयास करने लगा है। स्थानीय मुखिया कृष्ण मोहन महतो ने बताया कि चैती इस गाँव में कुछ दिनों से ही रह रही थी। लेकिन मौके पर मौजूद इस गाँव की महिला ने इसका खंडन करते हुए बताया कि चैती चार-पाँच वर्षों से यहीं रह रही थी। वहीं प्रखंड आपूर्ति पदाधिकारी भोलागिरी ने बताया कि 2011 की जनगणना के अनुसार चैती का घर बरांटी में है जिसके कारण इसके नाम से राशन कार्ड इस गाँव में नहीं बन सका। चैती के मौसेरे भाई देवलाल ने भी इसका खंडन करते हुए बताया कि वह चार-पाँच साल से यहीं रह रही थी। फिर भी इसका नाम यहाँ के राशन कार्ड में नहीं डाला गया। हालाँकि चैती की माँ रतिया देवी के नाम से राशन कार्ड है। पूरा मामला 'गोलपोस्ट शिफ़्ट' करने जैसा लग रहा था। गाँव के लोग यह कह रहे थे कि वह समसपुरा में ही रहती थी, जबकि स्थानीय प्रशासन का कहना है कि वह यहाँ की नहीं थी। यहाँ रहती नहीं थी इसलिए मरने के बाद की ज़िम्मेदारी हमारी नहीं है।

चैती का नाम राशन कार्ड में नहीं डाला गया। गाँव के लोग यह कह रहे थे कि वह समसपुरा में ही रहती थी, जबकि स्थानीय प्रशासन का कहना है कि वह यहाँ की नहीं थी। यहाँ रहती नहीं थी इसलिए मरने के बाद की ज़िम्मेदारी हमारी नहीं है।

इस प्रकरण में एक दूसरा दृश्य भी था, जहाँ अचानक कुछ महिलाएं आती हैं और चैती के परिजन होने का दावा करती हैं। उन महिलाओं का कहना था कि चैती अपने ससुराल में रहती थी और यहाँ कुछ दिन पहले ही आई थी। यह महिलाएं अपने आपको चैती की जेठानी बता रही थी। गाँव में पूछताछ करने पर पता चला कि अकेली पड़ी चैती के मरने के बाद परिजन होने की दावेदारी शायद सरकारी सहायता के लाभ पाने का प्रयास है।

और भी हैं चैती यहाँ

कहानी चैती पर ही ख़त्म नहीं होती है। इस टोले में कई और चैती अपना जीवन मौत के इंतज़ार में जी रही हैं। गाँव के अधिकांश लोगों ने राशन कार्ड में नाम न होने, और सही समय पर राशन नहीं मिलने का आरोप लगाया।

सुनैना देवी (60) पति तपेश्वर मांझी, पिछले तीन साल से बीमार है। एक साल से पैसे के अभाव में उसका कोई इलाज नहीं हो पाया है। तपेशवर मांझी ने बताया कि एक साल पहले सरकारी अस्पताल में इलाज के लिए गए थे। उसके बाद से दुबारा नहीं गए। सुनैना अस्पताल भी नहीं जाना चाहती है। उनका कहना है कि सरकारी अस्पताल में भी दवा बाहर से लानी होती है, जिसका पैसा इनके पास नहीं है। बिना पैसे के इलाज सरकारी अस्पताल में भी संभव नहीं है। फिर अस्पताल के बेड पर मरने से अच्छा है कि घर में सबके सामने मरना। सुनैना का समर्थन गाँव के अधिकतर लोगों ने किया। अस्पताल में डाक्टर नहीं मिलते, बिना पैसे के इलाज नहीं होता, उल्टे आने जाने में खर्च हो जाता है।

इस गाँव में मंक्षरिया देवी, नथुनी मांझी, लच्छु मांझी, जैसे कई लोग हैं जिनका अब अपना कोई नहीं है। शरीर में इतना सामर्थ नहीं है कि मज़दूरी कर सके और उन्हें हर महीने राशन नहीं मिलता जिससे कि रोज़ भरपेट भोजन मिल सके। ज़्यादातर लोगों का कहना था कि सार्वजनिक जन वितरण प्रणाली में भारी गड़बड़ी है। लोगों को हर महीने राशन नहीं मिलता है। मंक्षरिया देवी कहती हैं कि हम लोग पढ़े लिखे नहीं हैं। डीलर एक महीने का राशन देता है और फिर दो तीन महीने तक नहीं देता। कभी कभी बिना राशन दिए भी कार्ड में लिख देता है। लोगों का राशन कार्ड भी डीलर ही रख लेता है। देवलाल मांझी का कार्ड भी गाँव के डीलर जगन्नाथ के पास ही रखा था। कई लोगों का नाम कार्ड में नहीं हैं जिससे लोगों को राशन नहीं मिल पा रहा है। पंचायत के मुखिया कृष्ण मोहन महतो ने बताया कि नई सामाजिक, आर्थिक व जागिगत जनगणना के आधार पर लाभार्थि परिवारों की सूची बनाई गई थी जिसमें पंचायत की कोई भूमिका नहीं थी। कुछ लोगों का नाम इसमें छूट गया जिसे जोड़ने के लिए ब्लॉक में सूचित कर दिया गया है। इसी टोले के करण मांझी ने कहा कि उनके पिता सरयू मांझी की मौत दस साल पहले हो गई थी। उनके नाम से राशन मिलना बंद हो गया था। इस महीने अचानक उनके पिता के नाम से भी तेल का कूपन मिला। करण का आरोप है कि दस साल तक डीलर ही स्वयं उनके पिता के नाम का राशन और तेल लेता रहा होगा। अब चैती की मौत के बाद डीलरों की जाँच हुई तो सरयू मांझी के नाम का कूपन भी घर भेज दिया गया।

हालात इतने बदतर हैं कि गाँव में ऐसे भी लोग मिले जो यह कह रहे थे कि पैसे के अभाव में सरकारी राशन भी नहीं ख़रीद पाते। उनके पास इतना भी पैसा नहीं कि राशन की दुकान से चावल गेंहू ख़रीद सकें। शम्भू मांझी बताते हैं कि मनरेगा का काम गाँव में बंद है, जिससे नियमित मज़दूरी नहीं मिल पा रही है। लोग खेतों में मज़दूरी कर जी रहे थे । इलाक़े में सूखे की स्थिति से खेत में मज़दूरी भी नहीं हो सकी। ग़ौरतलब है कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के आलोक में पात्र व्यक्तियों को 2 रुपये प्रति किलो की दर से 2 किले गेंहू और 3 रुपये प्रति किलो की दर से 3 किलो चावल दिया जाता है।

इन भूखे परिवारों को अनाज की उपलब्धता की गारंटी तो नहीं मिल पाई लेकिन अधिकतम घरों में प्रकल्प योजना अंतर्गत शौचालय का अर्द्धनिर्मित ढॉचा अवश्य दिखा। लोगों ने बताया तथा दिखा भी कि एक भी शौचालय उपयोग के लायक नहीं बना। एक अदद चापाकल था वह भी उस दिन काम नहीं कर रहा था । स्थानीय विद्यालय के प्रधान शिक्षक श्री नागेन्द्र पंडित नें कहा कि टोले के लोग पानी के लिए विद्यालय परिसर में लगे चापाकल का उपयोग करते है। तमाम दावों और प्रयासों के बावजूद गाँव में शौचालय का अभाव स्वच्छ भारत मिशन की असफ़लता की कहानी बयां करती है।

आज जिस प्रकार चैती देवी का बड़ा पुत्र बाल मजदूर बनने और बचपन बेचने को विवश है तथा अन्य दोनों बच्चों रंजय तथा प्रीती बिना मॉ-बाप का अनाथ जीवन जीने को मजबूर है। यही हाल है पूरे टोले का। इस भयंकर ठंड में भी इन परिवारों को समुचित गर्म कपड़े और पर्याप्त अनाज भी मयस्सर नहीं हो सका । जॉच टीम नें पाया कि चैती देवी की मौत सामाजिक राजनीतिक विफलता तथा सरकारी उदासीनता का प्रतीक है। कुल मिलाकर गाँव की ज़मीनी हालत और सरकारी समावेशी विकास के दावे एक दूसरे को झुठलाते प्रतीत हो रहे हैं। इससे यह भी परिलक्षित हो रहा है कि आज भी अंतिम पायदान तक आते-आते विकास की गति शिथिल पड़ जा रही है।

हालात इतने बदतर हैं कि गाँव में ऐसे भी लोग मिले जो यह कह रहे थे कि पैसे के अभाव में सरकारी राशन भी नहीं ख़रीद पाते। उनके पास इतना भी पैसा नहीं कि राशन की दुकान से चावल-गेंहू ख़रीद सकें।

स्थानीय प्रशासन चैती को 'बाहरी' मान रही है, ताकि ज़िम्मेदारी से बच सके। चैती का क्या क़सूर था? मूसहर समुदाय के अधिकांश लोग अपने गाँव से रोज़गार की तलाश में पलायन कर जाते हैं। चैती भी अपनी परिस्थितियों के कारण अपनी ससुराल से मैके, मैके से मॉसी के यहाँ आकर बस गई। पिछले चार-पाँच सालों में लोकसभा, विधानसभा, व पंचायत चुनाव हुए, फिर भी चैती समसपुरा की नागरिक न हो सकी। यहाँ के मतदाता सूचि में इसका नाम शामिल नहीं हो सका और अंततः सरकारी योजना की लाभार्थी नहीं हो सकी। सरकारी योजनाओं में अनियमितता मसलन - जनवितरण प्रणाली, आंगनवाड़ी केन्द्र, व मध्यान भोजन में गड़बड़ी से स्थानीय स्तर पर लोग भोजन के अधिकार से वंचित रह जाते हैं। वहीं दूसरी ओर विभेदकारी विकास की प्रक्रिया गाँव में इतनी धीमी चाल से चलती है कि लोग मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हो जाते हैं।

(यह रिपोर्ट समसपुरा गाँव के लगभग 30 – 35 मूसहर समुदाय के लोगो के अतिरिक्त ग्राम प्रधान, प्रखंड आपूर्ति पदाधिकारी, आंगनबाड़ी सेविकाओं, गाँव के स्कुल के शिक्षको, विद्यार्थियों और अन्य स्थानीय लोगों से बातचीत पर आधारित है। चैती की मौत के बाद पैरवी ने स्थानीय सामाजिक संगठनों, के साथ गाँव जाकर हालात जानने का प्रयास किया था जिसमे पैरवी, नई दिल्ली के दीनबन्धु वत्स के साथ जवाहर ज्योति बाल विकास केन्द्र, समस्तीपुर के सुरेन्द्र कुमार, बिहार लोक अधिकार मंच, समस्तीपुर की सोनाली कुमारी, समाजवादी महिला सभा, समस्तीपुर की अंजु कुमारी, अखंड एकता, समस्तीपुर के राजीव गौतम व औलिया अध्यात्मिक अनुसंधान केन्द्र, वैशाली के रामकृष्ण समसपुरा शामिल थे।)

■

खबर

सरकारी बदमाशी, बेबस आदिवासी

– दीपक गोस्वामी

गले में फांसी का फंदा, हाथों में हथकड़ी और मुंह पर पट्टी बाँधे मध्य प्रदेश के बैतूल ज़िले के कलेक्टर कार्यालय के सामने आदिवासियों का जमावड़ा लगा हुआ है। वे कोई नुक्कड़ नाटक नहीं दिखा रहे। यह तरीका है प्रशासन के ख़िलाफ़ उनके अनोखे प्रदर्शन का। ये तरीका है प्रशासन को उसकी वादाख़िलाफ़ी याद दिलाने, अपनी ज़मीन पर अधिकार पाने के संघर्ष और प्रशासन को संदेश देने का, तभी वे अपने प्रदर्शनों में कह रहे हैं-

'जीने दो या फांसी दो, ज़मीन दो या मौत दो'

बैतूल ज़िले के चिचौली क्षेत्र पश्चिम वन मंडल की सांवलीगढ़ रेंज में उमरडोह वनग्राम है। लगभग आधा सैकड़ा आदिवासी किसान परिवार यहाँ वर्षों से छप्पर बनाकर रह रहे हैं। वह यहीं खेती-किसानी करते हैं और अपना परिवार पालते हैं। लेकिन 19 दिसंबर की सुबह उनसे उनका आशियाना छीन ले गई। उस दिन भी वह रोज़मर्रा के कामों मे लगे थे, तभी अचानक वन विभाग की टीम पुलिस और एसएएफ के जवानों के साथ आ धमकी। उनके साथ जेसीबी मशीन भी थी। आदिवासी परिवार कुछ समझते, उससे पहले ही उनके आशियाने जेसीबी की ज़द में आ चुके थे। लगभग दो सौ लोगों का अमला तीन भागों में बँटकर पूरे क्षेत्र को घेर चुका था। असहाय आदिवासी मूकदर्शक बने बस अपने उजड़ते आशियानों को देख रहे थे।

पुंदिया बाई भी उनमें से एक थीं। वह बताती हैं, 'उन्होंने हमारा सब उजाड़ दिया। वर्षों से हम जिन पेड़-पौधों को बच्चों की तरह पाल रहे थे, उन्हें भी जड़ से उखाड़ दिया। टप्पर तोड़ दिए गए। विरोध करने पर मारपीट की गई।' शिवपाल बताते हैं, 'जाते-जाते वो बोल गए थे, पानी मत पीना, फ़सलें मत खाना, उनमें ज़हर मिला दिया है।'

उस दिन वन विभाग की टीम ने आदिवासी किसान परिवारों के सिर्फ आशियाने ही नहीं तोड़े बल्कि उनकी गेहूँ की फ़सल को ट्रैक्टर से रौंद दिया। जेसीबी से खेत खोद दिए। पीने के पानी और फ़सल में कीटनाशक डाल दिया। क्षेत्र में दो दशकों से आदिवासियों के हक़ की लड़ाई लड़ रहे श्रमिक आदिवासी संगठन के अनुराग मोदी कहते हैं, 'जिस ज़मीन पर ये परिवार दशकभर से अधिक समय से रह रहे हैं, वन विभाग उसे अपनी ज़मीन बताता है। इसलिए इन परिवारों को वहाँ से हटाना चाहता है। लेकिन अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वनवासी अधिनियम (वन अधिकारों की मान्यता), 2006 के तहत यह ग़ैरकानूनी है। इस कानून में प्रावधान है कि वे आदिवासी जो 2005 के पहले से जिन वन क्षेत्रों में रह रहे हैं उन्हें वहाँ से हटाया नहीं जाएगा। पर वन विभाग वन अधिकार अधिनियम 1927 के पुराने कानून के तहत काम कर रहा है। यह ग़लत है।'

उमरडोह वासियों के साथ ऐसा पहली बार भी नहीं हुआ। इससे पहले भी वन विभाग 2011 में एक ऐसी ही कोशिश कर चुका है। लेकिन स्थानीय पत्रकार अकील अहमद बताते हैं, '2005 से ही वन विभाग के ऐसे प्रयास जारी हैं। पर हर बार वन विभाग के अमले के जाते ही ये लोग अपने छप्पर फिर से डालकर रहना शुरू कर देते थे।'

जिस दिन वन विभाग की यह कार्रवाई हुई उस दिन बैतूल में पारा लगभग चार डिग्री था। वो रात आदिवासी परिवारों ने अपने बच्चों सहित खुले आसमान के नीचे गुज़ारी। उन्हें उम्मीद थी कि बस एक-दो दिन की ही तो बात है, फिर से पहले की तरह छप्पर डाल लेंगे। लेकिन इस बार वन विभाग उन्हें हटाने की पूरी तैयारी में था। उनकी आजीविका का साधन उनकी फ़सल तो पहले ही नष्ट कर दी गई थी। चार दिन तक इन परिवारों ने सर्द रातें खुले आसमान के नीचे गुज़ारीं। जब बात नहीं बनी तो 24 दिसंबर को जिला कलेक्ट्रेट के आगे धरने पर बैठ गए। उनकी माँग थी कि वन अधिकार कानून 2006 को उसकी मूल भावना और प्रावधानों के साथ लागू किया जाए। साथ ही उमरडोह में प्रशासन के दल ने वनभूमि से आदिवासियों के कब्जे हटाते समय ज़्यादती की थी। उस मामले में सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के तहत बैतूल में बने शिकायत निवारण प्राधिकरण से जाँच करवाकर दोषियों पर कार्रवाई की जाए। जब आठ दिन धरने को हुए तो शासन-प्रशासन के माथे पर बल पड़ा। मामले में राज्य के मुख्यमंत्री को हस्तक्षेप करना पड़ा। मुख्यमंत्री के आदेश पर स्थानीय विधायक हेमंत खंडेलवाल और ज़िला कलेक्टर ज्ञानेश्वर वी. पाटिल ने आदिवासियों की सभी माँगें मानने का आदेश देकर उन्हें धरने से उठाया। वे वापस उमरडोह लौट गए। लेकिन उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही वन विभाग वहाँ से उनका पूरा सामान भरकर ले जा चुका था। तब से ही वह कड़ाके की ठंड में खुले आसमान के नीचे रह रहे हैं। वन विभाग की चौकी यहाँ से महज़ 500 मीटर की दूरी पर है। वन विभाग का अमला कभी भी आ धमकता है। गाली-गलौच करता है। महिलाओं से छेडछाड़ करता है। ठंड के कारण बच्चों की तबियत बिगड़ रही है। पर वह अपनी ज़मीन छोड़ना नहीं चाहते।

फूलवती बाई बताती हैं, 'हमारे घर तोड़ दिए तब भी उन्हें सुकून नहीं मिला। अब आते हैं, हमारे साथ जोर आजमाइश करते हैं। सामान में आग लगा देते हैं। नहीं तो यहाँ से भाग जाने को कहते हैं. रात को 10-10 बजे आते हैं। क्या सरकार ने रात की कार्रवाई के आदेश दिए हैं?'

(तहलका हिंदी डॉट कॉम से साभार)

जन्नत की हक़ीक़त: पाताल से कुछ नोट्स

▸ रजनीश साहिल

हम को मालूम है
जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के ख़ुश रखने को
ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है

मिर्ज़ा ग़ालिब के इस शेर के मानी कुछ और खुलते हैं वहाँ, जिसे कुछ लोग मध्य प्रदेश का स्वर्ग कहते हैं। वैसे तो पहाड़ों के बीच से नीचे गहरे तक उतरते जाने और तलहटी में जीवन गुज़ारने का नाम है - पातालकोट, पर इधर-उधर छपा हुआ कुछ जो इस जगह के बारे में पढ़ा तो कुछ लोगों ने इसे मध्य प्रदेश का स्वर्ग भी लिखा है- पर्यटन की नज़र से। जिन्हें प्रकृति के साथ वक़्त बिताना पसंद है और जो शहरों की आपाधापी से ऊबकर कुछ वक़्त के लिए तफ़रीहन यहाँ आते हैं उनके लिए यह जगह बेशक जन्नत से कम नहीं, लेकिन यहाँ के बाशिंदों का रोज़मर्रा का जीवन जाने बिना इस जन्नत की हकीक़त नहीं जानी जा सकती।

पातालकोट मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा ज़िले में स्थित पर्यटन स्थल के तौर पर जाना जाता है, जो पर्यटन व वन विभाग द्वारा बनाए गए दो व्यू प्वाइंट्स से काफ़ी ख़ूबसूरत नज़र आता है। मैं पहली दफ़ा इसकी हकीक़त से रू-ब-रू हुआ 2015 की मई में। साथ में थे छिंदवाड़ा के ही साथी अशोक मंदरे। मई के मौसम में 43 डिग्री तापमान होने के बावजूद वहाँ की प्राकृतिक छटा मन मोह रही थी। जहाँ तक नज़र जाए हरियाली से भरी घाटी, आसमान की नीली रंगत, धूप की लुका-छिपी और सिर पर लकड़ियों का गट्ठर रखे दूर कहीं जाती एक स्त्री। मानो कोई ख़ूबसूरत पेंटिंग जीवंत हो उठी हो। लेकिन जैसे-जैसे इस घाटी में बसे गाँवों की हकीकत से रू-ब-रू होते हैं, यह मोह छंटता जाता है। जैसा कि अब तक की यात्राओं के दौरान मेरे साथ तो कम से कम हुआ ही।

पहाड़ वाला शॉर्टकट

इस घाटी में बसे गाँवों में मूलतः भारिया जनजाति के लोग रहते हैं। इस इलाक़े में लगभग 3000 की कुल आबादी वाली इस जनजाति का सबसे बड़ा हिस्सा इन्हीं गाँवों में है। रातेड़ व्यू प्वाइंट पर खड़े हो, जब हम इस घाटी के सबसे नज़दीकी और विकसित गाँव रातेड़ जाने की बात कर रहे थे तो साथी अशोक का पहला सवाल था- 'क्या आप यह खड़ा पहाड़ उतर-चढ़ लेंगे?' पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने का अनुभव रहा है तो बिना ज़्यादा सोचे मैंने हामी भरी।

व्यू प्वाइंट पर दर्ज तहरीर के मुताबिक़ यह दूरी महज़ डेढ़ किलोमीटर होनी थी, मगर जब तय की तो पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने के अपने पिछले अनुभवों के हिसाब से किसी भी तरह लगभग दोगुनी से कम न लगी। रातेड़ पहुँचे तो ग्रामीणों ने बताया कि स्थाई (पक्का) सड़क मार्ग अब तक कई गाँवों तक नहीं पहुँचा है, हालाँकि कच्चा सड़क मार्ग पहले तीन-चार बार बना लेकिन एक बारिश होते ही वह नष्ट हो जाता है। इसलिए व्यू प्वाइंट तक, यानी सबसे नज़दीकी सड़क तक पहुँचने का यही एकमात्र रास्ता रहा है। अब पहली बार पक्की सड़क बन रही है।

हमें सड़क मार्ग का काम 'कार्य प्रगति पर है' के बोर्ड की तरह चलता हुआ दिखा भी, पर इस सड़क के बनने से भी आवागमन कितना आसान होगा यह कहना मुश्किल है। वजह यह कि सड़क मार्ग से यह दूरी डेढ़ किमी के बजाय लगभग 30 किमी हो जाएगी, जो कि पहाड़ी इलाकों की सड़कों के साथ जुड़ी और ख़त्म न की जा सकने वाली मजबूरी है और जिसे ग्रामीण

भी समझते हैं। लेकिन असल मुश्किल यह है कि कई सालों से जहाँ तक सड़क है वहाँ से शहर या बाज़ार तक पहुँचाने सुबह एक बस आती है जो शाम को वापस होती है। अगर वह निकल गई तो दूसरा विकल्प टाटा 207, कमांडर, गामा जैसी कुछ प्राइवेट गाड़ियाँ हैं जिनका कोई समय निश्चित नहीं है। पहाड़ की तलहटी में बसे गाँवों में रात जल्द ही घिरती है जिसका हवाला गाँव वालों ने बातचीत के दौरान दिया और यह भी जताया कि आवागमन के साधन बढ़ें तो इन सड़कों का भी कुछ लाभ हो, वरना तो जब पैदल ही चलना है तो यह पहाड़ वाला शॉर्टकट ही सही है।

ज्ञान की दुश्वार राह

रातेड़ में प्राथमिक विद्यालय भी है और छात्रावास भी। बिजली के खंभे भी लगे हुए दिखे और एक सोलर लैंप भी। लेकिन जब कक्षा सात और आठ की छात्रा पार्वती व गौरारानी से बात की तो पता चला कि बिजली कभी-कभार ही आती है और रात में तो अक्सर नहीं ही रहती।

इन छात्राओं को अपने विद्यालय पहुँचने के लिए रोज़ाना पहले पहाड़ चढ़कर मुख्य सड़क तक फिर वहाँ से लगभग सात किमी दूर सिंदौली स्थित माध्यमिक विद्यालय पहुँचना होता है। यानी इन छात्राओं को पढ़ने के लिए रोज तक़रीबन 18 किमी पैदल चलना पड़ता है। और जब सड़क बन जाएगी तब भी यही आलम होगा क्योंकि एक तो सड़क मार्ग से यह दूरी लगभग 40 किमी के आसपास होगी और दूसरी वजह है परिवहन के साधनों का अभाव। हाँ, यह जरूर संभव है कि सड़क बन जाने पर रातेड़ के बच्चे सिंदौली की जगह चिमटीपुर के माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने जाएँ, पर तब भी 10 किमी पैदल चलना तो तय है।

इन स्थितियों में कारेयाम, सौपटिया, जड़, खमारपुर जैसे गाँवों - जहाँ प्राथमिक विद्यालय भी नहीं हैं - के बच्चों की जद्दोजेहद की कल्पना करना मुश्किल नहीं है।

इसकी वजह यह नहीं थी कि उन्हें पैसे की अहमियत नहीं मालूम थी, बल्कि शायद यह थी कि उस दिन उनके घर में तरकारी की जगह लेने के लिए वही एकमात्र विकल्प था।

इन स्थितियों के बावजूद जो एक बात सुखद और किसी हद तक शिक्षा के मामले में उम्मीद की किरण की तरह दिखी वह यह थी कि जहाँ प्राथमिक विद्यालय था वहाँ उसके साथ आदिवासी कन्या आश्रम भी मौजूद था और उनमें छात्राओं की उपस्थिति भी दिखी। इस उम्मीदअफ़जाह स्थिति में एक 'लेकिन' का पेवंद भी लगा दिखा। वह ऐसे, कि हमारे हर दौरे में नियमित शिक्षकों व आश्रम अधीक्षकों में से अधिकांश की अनुपस्थिति, अतिथि शिक्षकों के भरोसे चल रहे स्कूल व आश्रम, और पाँचवीं कक्षा के बच्चों द्वारा दो अंकों के आसान से जोड़-घटाव न कर पाने ने इस उम्मीद पर थोड़ी संदेह की परत भी चढ़ा ही दी। बाकी सूरत-ए-हाल यह है कि प्राथमिक शिक्षा के बाद आगे माध्यमिक और हाई स्कूल तक की पढ़ाई के लिए छिन्दी या तामिया में हॉस्टल मिल गया तो ठीक, वरना किराये पर कमरा लेकर पढ़ना तो सबके बस में नहीं है, सो अधिकांश बच्चे प्राथमिक के बाद ही और कई माध्यमिक के बाद पढ़ाई छोड़ चुके हैं।

एक अपवाद

रातेड़ पंचायत का ही कारेयाम गाँव इन स्थितियों के बाद भी एक अपवाद की तरह है।

कुल 218 की आबादी वाले इस गाँव के सारे बच्चे पढ़ रहे हैं। किसी ने भी हाई स्कूल से पहले पढ़ाई नहीं छोड़ी और बीते तीन वर्षों में यहाँ के 7 बाशिंदों ने सरकारी नौकरी पाई है। बावजूद इसके कि यहाँ प्राथमिक विद्यालय भी बंद हो चुका है।

पैसे से ज़्यादा क़ीमती

जब हम पार्वती और गौरारानी से बात कर रहे थे तब वे एक पेड़ पर चढ़कर उसकी मुलायम हरी पत्तियाँ चुन रहीं थीं, जिनसे बहुत ही मोहक सुगंध उठ रही थी। जब इसके बारे में पूछा तो बताया गया कि यह कोयलार की भाजी है, जिसे वे रात में पकाकर खाएँगे। हमारे प्रश्नों का संक्षिप्त वाक्यों या महज 'जी' कहकर जवाब दे रही इन बच्चियों से जब अशोक जी ने कहा कि वे तोड़ी गई भाजी उन्हें दे दें और बदले में दोनों कुछ पैसे ले लें, तो दोनों का एक ही जवाब था - 'ना'। इसकी वजह यह नहीं थी कि उन्हें पैसे की अहमियत नहीं मालूम थी, बल्कि शायद यह थी कि उस दिन उनके घर में तरकारी की जगह लेने के लिए वही एकमात्र विकल्प था। इसका अंदाज़ा मैं इस बात से लगा सकता हूँ कि गाँव में दो अन्य बच्चे, जो भोजन करते हुए मिले थे, उनमें से एक के पास महज़ रोटी थी और दूसरा सूखी चने की भाजी में पानी और नमक डालकर उसके साथ रोटी का निवाला निगल रहा था। थोड़ी सी भाजी की कीमत बढ़ते-बढ़ते दोनों बच्चियों को 50–50 रुपये देने तक पहुँच जाने पर भी जवाब 'ना' रहना भी कुछ ऐसा ही कह रहा था। इस 'ना' और गाँव में मौजूद बच्चों को देखकर कुपोषण के स्तर का अंदाज़ा अपने-आप ही हो जाता है।

बस एक विकल्प 'डोली'

होने को तो रातेड़ ग्राम पंचायत है लेकिन वहाँ प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ तक नहीं है। अपने खेत और जंगल में लगे पेड़ों से एकत्रित की गई चिरोंजी की दो छोटी टोकरियों के साथ अपने घर के बाहर बैठे बालचंद भारिया के छोटे बच्चे के पैर की

हड्डी टूट गई थी। बालचंद को देखकर ही पता चल जाता है कि वे खुद बेहद कमज़ोर स्वास्थ्य वाले हैं। ऐसे में उन्हें अपने बच्चे को पीठ पर लादकर पहाड़ चढ़ते हुए तकरीबन 15 किमी दूर अस्पताल ले जाना पड़ा। बच्चे के पैर पर प्लास्टर चढ़ा हुआ है, जब उतरेगा तब उन्हें एक बार फिर इस प्रक्रिया से गुज़रना पड़ेगा।

यह कहानी अकेले बालचंद की या रातेड़ गाँव की नहीं है, बल्कि इस घाटी में बसे तकरीबन सभी परिवारों और सभी गाँवों की है। रातेड़, चिमटीपुर, गैलडुब्बा और घटलिंगा चूँकि मुख्य सड़क से सबसे नज़दीक हैं इस लिहाज़ से इन गाँवों की यह मुश्किल फिर भी कम लगती है उन गाँवों के बरअक्स, जो हर्राकछार या घटलिंगा पंचायत में हैं और जहाँ से मुख्य सड़क तक आने में ही आधा दिन गुज़र जाता है। मई से नवंबर 2015 के बीच हुई यात्राओं के दौरान हमने एक सवाल इन 12 गाँवों में पूछा कि यदि कोई गंभीर बीमार हो जाए तो क्या करते हैं? जवाब एक ही मिला - 'डोली (खाट) पर रखकर या पीठ पर लादकर वहाँ तक ले जाते हैं जहाँ से कुछ साधन का इंतज़ाम हो सके, या अस्पताल से एंबुलेंस आ सके।'

कुछ गाँवों में प्राथमिक उपचार आँगनबाड़ी से उपलब्ध हो जाता है पर यह भी कभी-कभार की ही बात होती है। बाकी तो लोग अपनी जानकारी से या गाँव के ही किसी जानकार की सलाह से जड़ी-बूटी से प्राथमिक उपचार करते हैं। रोग बढ़े तो पीठ पर लादकर अस्पताल ले जाते हैं।

डॉक्टर चौकीदार

ग्रामीण बताते हैं कि सन् 2007 में प्रदेश के मुख्यमंत्री महोदय का गैलडुब्बा गाँव में आगमन हुआ था, तब नवीन आदिवासी कन्या आश्रम और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र दोनों का ही शिलान्यास किया गया था और दोनों भवन बनकर तैयार हुए 2014 में।

गैलडुब्बा में बने स्वास्थ्य केन्द्र की बनावट देखकर यह अचंभा हो सकता है कि कुल 400 की आबादी वाले गाँव में आधुनिकतम सुविधाओं को ध्यान में रखकर बनायी गयी है अस्पताल की यह इमारत। पर असल हैरत की बात यह है कि 2014 से बस यह इमारत है, और मौजूद हैं बुखार, सिरदर्द, सर्दी-खाँसी, उल्टी-दस्त की दवाइयाँ जो नियमित रूप से यहाँ पहुँचती रहती हैं। चिकित्सक कौन है, कोई है भी या नहीं, ग्रामीणों को आज तक नहीं पता। उनके लिए इस इमारत में डॉक्टर की भूमिका कोई निभाता है तो वह व्यक्ति जो इमारत की देखरेख के लिए चौकीदार नियुक्त है।

खेती-पानी

मूलतः वनोपज के सहारे अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतें पूरी करते इस समुदाय के लोग खेती भी करते हैं और ख़ास बात यह कि बिना रासायनिक खाद के खेती करते हैं। कोदो, कुटकी, बल्हर, मक्का, अरहर जैसी बारिश पर निर्भर फ़सलें ये उगाते हैं और यही इनका मुख्य भोजन भी हैं। लेकिन अब जो बारिश का समय गड़बड़ाया है, उसके कारण इनकी जो थोड़ी-बहुत खेती है वह पहले की तरह साथ नहीं दे रही। न केवल खेती मुश्किल हो गई है, बल्कि पीने के पानी का भी अभाव होता जा रहा है। साल के कई महीने ऐसे गुज़रते हैं जब पीने का पानी भी गाँव के कुँए में नहीं होता, पहाड़ से बूँद-बूँद टपकते झरनों से पानी एकत्रित करना होता है। जब ऐसा नहीं होता तब भी इन गाँवों में पीने का साफ़ पानी तलाशना भूसे के ढेर में सुई ढूँढने जैसा काम है।

रोज़गार

इस क्षेत्र से दूर-दराज़ के इलाकों में मज़दूरी के लिए जाने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। ख़ासतौर पर फ़सलों की कटाई के मौसम में गाँवों में बस बूढ़े और बच्चे ही नज़र आते हैं, बाकी लोग जबलपुर, होशंगाबाद, इटारसी व अन्य ज़िलों की ओर पलायन कर जाते हैं, जहाँ उन्हें दो सौ रुपये रोज़ मज़दूरी मिलती है। जड़ी-बूटियों के मामले में यह काफ़ी समृद्ध इलाक़ा है। कुछ लोगों के लिए यह भी रोज़गार का एक साधन है। हालाँकि ऐसे लोगों की संख्या बहुत नहीं है। गैलडुब्बा, कारेयाम और रातेड़ से कुल 18–20 लोग पर्यटकों को जड़ी-बूटी बेचने आते हैं व्यू प्वाइंट पर। कुछ रोज़ आते हैं, कुछ सप्ताहांत में। रोज़ाना के हिसाब से इनकी कमाई 100 रुपये के आसपास होती है।

बहरहाल, होने को यह कुछ बिखरे नोट्स हैं। पर शायद इनसे मध्य प्रदेश के इस स्वर्ग की हकीक़त कुछ तो साफ़ हुई ही होगी। ■

पेरिस समझौता: अच्छाई, बुराई और निराशा

▸ अजय के. झा

पेरिस में दुनिया के 169 देशों ने नए जलवायु परिवर्तन समझौते को 12 दिसंबर 2015 को अपनाया। वैश्विक मीडिया ने भी इस समझौते को ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण माना। समझौते को दो मुख्य भागों में बाँटा गया है। पहले हिस्से में समझौते को स्वीकारने से संबंधि प्रावधानों को ध्यान में रखा गया है। इस हिस्से में आईएनडीसी (देशों द्वारा उत्सर्जन कम करने के प्रयास), समझौते को प्रभाव में लाने संबंधी निर्णय, 2020 से पूर्ण होनेवाली कार्रवाई और प्रशासनिक व बजटीय मामलों पर विस्तार है। दूसरा हिस्सा 12 पृष्ठ का पेरिस समझौता का दस्तावेज़ है। इसमें प्रस्तावना सहित 29 आर्टिकल हैं जिनमें परिभाषा, उद्देश्य, आईएनडीसी, शमन, सिंक और जलाशय, कार्बन बाज़ार, अनुकूलन, क्षति और नुक़सान, वित्त, प्रौद्योगिकी, क्षमता वर्द्धन, शिक्षा, प्रशिक्षण और जागरुकता आदि हैं। यह समझौता हस्ताक्षर के लिए 22 अप्रैल 2016 से 21 अप्रैल 2017, न्युयॉर्क में उपलब्ध होगा, और कम से कम 55 देशों द्वारा करार करने के बाद ही लागू किया जाएगा।

पेरिस समझौते का महत्व

यह समझौता कई दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इस बार सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यूएनएफ़सीसीसी के 197 सदस्य देशों के बीच आपसी सहमति रही। अभी तक की वार्ताओं में ऐसा पहली बार हुआ है कि सभी देशों ने अपनी सहमति दी है। हालाँकि पेरिस में भी यह संभव नहीं लग रहा था। पहले दो मसौदों पर बहस और अस्वीकृति को देखते हुए किसी सहमति पर पहुँचना मुश्किल लग रहा था। पहले मसौदे की प्रस्तुति पर ही लोगों की तरफ़ से विरोध जताया जाने लगा था। लोगों की निराशा को दूर करके सहमति में बदलने तक मेज़बान टीम ने काफ़ी कुशलता और सावधानी से काम किया और आख़िरकार अंत में समझौता तैयार हुआ जिसके लिए जयध्वनि भी मिली।

लंबी अवधि के लक्ष्य के रूप में तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस से कम रखने पर वैश्विक समुदाय की अभिस्वीकृति समझौते की दूसरी महत्वपूर्ण बात रही। छोटे द्वीपीय विकासशील देश बहुत पहले से तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेलसियस के बजाए 1.5 डिग्री सेल्सियस करने की मांग कर रहे थे जो इस बार पेरिस में पूरी हो पाई है। दूसरी महत्वपूर्ण बात पेरिस सम्मेलन में समता (सीबीडीआर) के प्रावधान को लाना रहा। विकसित देशों की माने तो औद्योगिकृत देशों और उभरते विकासशील दशों में कोई विभेद नहीं होना चाहिए। लेकिन विसाशील देशों के मुताबिक औद्योगिकृत और विकासशील दशों में विभेद नहीं किया गया तो यह कन्वेंशन के समता के सिद्धांत के ख़िलाफ़ होगा। समझौता में देशों को विकसित और विकासशील देशों में विभेद का स्पश्ट वर्णन है। विकसित देशों को समता और सीबीडीआर के लिए राज़ी करना फ्रांस के लिए किसी बड़ी कूटनीतिक जीत से कम नहीं है।

समझौता किस तरीके का हो, क्या उसे कन्वेंशन के सिद्धांतों और शर्तों के अंदर रखा जाए, यह भी बहस का मुख्य बिंदु था। तय पाया गया कि समझौता लचीला होना चाहिए जिससे उसमें कालावधि के अनुसार बदलाव लाना संभव हो। एक तरह से पेरिस समझौता कन्वेंशन के अंदर है, लेकिन यह फ्रेमवर्क कन्वेंशन को बदलता नहीं है, बल्कि खुद उसका परिक्षेप (एनेक्स) है। जहाँ विकसित देश पेरिस फ्रेमवर्क कन्वेंश्न और क्योटो करार को बदल देना चाहते थे, इस विधि से 'पेरिस समझौता' फ्रेमवर्क कन्वेंशन को अलग नहीं करता है, विकासशील देश जिसके सख़्त ख़िलाफ़ थे।

समझौते के माध्यम से कन्वेंशन के क्रियान्वयन को और बेहतर करने की उम्मीद है। समझौते की प्रस्तावना और सिद्धांत में समता और सीबीडीआर को

क़ायम रखकर विकासशील देशों की एक और बड़ी जीत हुई है। जलवायु न्याय के लिए महत्वपूर्ण क्षति और नुक़सान को भी समझौते में लाने के लिए विकासशील देशों ने काफ़ी प्रयास किए।

समझौते की मुख्य आलोचनाएँ

पेरिस में हुआ समझौता काफ़ी हद तक सफ़ल माना जा रहा है, लेकिन इसके बावजूद कई ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें लेकर विकासशील देश, विशेषज्ञ आदि खुश नहीं हैं। नागरिक समाज संगठनों ने भी समझौते में तात्कालिकता और महत्वकांक्षा के अभाव पर विरोध व्यक्त किया है।

ला विया कैम्पेसिना ने इस समझौते पर अपनी राय देते हुए कहा कि 'यह समझौता दुनियाभर के लोगों के लिए कुछ अच्छा साबित होने वाला नहीं है।' नासा के पूर्व वैज्ञानिक और जाने माने जलवायु कार्यकर्ता जेम्स हेन्सन ने इस समझौते को 'धोखा' कहा। मशहूर ब्रिटिश पत्रकार जार्ज मेनब्यिट ने द गार्जियन में लिखा 'अब हम चाहे जितने भी प्रयास कर लें आने वाली पीढ़ियाँ हम लोगों के प्रति आदर का भाव नहीं रखेंगी।'

वास्तव में देखा जाए तो कई आलोचनाएँ काफ़ी हद तक सही हैं। समझौते में अच्छी मंशा के आगे कोई ठोस क़दम नहीं है जिससे सदी के अंत तक तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक रोका जा सके। बकौल विशेशज्ञों के अमरीका ने विकासशील देशों के सामने 1.5 डिग्री सेल्सियस को बतौर चारा इस्तेमाल किया। समझौते में 1.5 डिग्री सेल्सियस रखने की शर्त रखी कि भविष्य में कभी क्षति और नुक़सान की भरपाई के लिए विकसति देशों की कोई क़ानूनी ज़िम्मेदारी नहीं होगी। इस प्रावधान का आशय यह है कि विकासशील देश अब जलवायु परिवर्तन से हुए क्षति और नुक़सान की भरपाई के लिए विकसित देशों से ज़्यादा धन की अपेक्षा नहीं रख सकते, और न ही क़ानूनी तौर से उन्हें इसके लिए बाध्य कर सकते हैं।

व्यवसायिक लाभ के लिए ऐसे समाधानों को बढ़ाने का अवसर प्रदान किया है जिनकी विश्वसनीयता पर सवाल हैं। इस समझौते में समता और न्याय का न होना बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। समझौते में कुछ भी बाध्यकारी नहीं है, विकसित देश सहित सभी देशों को छूट है कि वह इच्छानुसार लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करें।

एक दूसरी बड़ी कमी इस समझौते में रही कि आईएनडीसी और मौजूदा प्रतिबद्धताएँ तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस से कम रखने के लिए काफ़ी नहीं हैं। यह बात जानते हुए भी पर्याप्तता की समीक्षा 2023 से पहले नहीं की जाएगी। कई विशेषज्ञों का मानना है कि अगर हम मौजूदा दर से कार्बन स्पेस का इस्तेमाल करते रहे तो 2030 तक 1000 गीगाटन का 80 प्रतिशत ख़त्म को हो जाएगा जिससे 1.5 डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को पूरा करने की संभावना न सिर्फ़ असंभव होगी बल्कि यह भी संभव होगा कि तापमान वृद्धि 2 डिग्री सेल्सियस से भी ऊपर पहुँच जाए। वास्तव में अगर तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस से कम रखना है तो 80 प्रतिशत जीवाश्म ईंधन का उपयोग रोकना होगा। हालाँकि पैरिस समझौते में जीवाश्म ईंधन का नाम तक नहीं हैं, उसके उपयोग को रोकना तो बहुत दूर की बात। यहाँ तक कि अक्षय ऊर्जा शब्द का उल्लेख भी केवल दक्षिण अफ्रीका के संदर्भ में एक बार किया गया है।

समझौते में विकसित देशों की जवाबदेही का अभाव है। उत्सर्जन कम करने के लिए देशों द्वार दिए गए 'लक्ष्य' बाध्यकारी नहीं है। अगर देश यह दिखा सके कि वह अपने स्तर पर प्रयास कर रहे हैं, और पहले से अधिक प्रयास कर रहे हैं तो लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उनपर किसी तरह का दबाव डालना संभव नहीं है। उन्हें स्वतः ही लक्ष्य तय करना है, चाहे वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पैमाने पर उपयुक्त हो या नहीं। उत्सर्जन कम करने के संदर्भ में विकसित देशों से अपेक्षा की गई है कि वह राष्ट्रीय स्तर पर पूरे आर्थिक संरचना में उत्सर्जन कम करने का प्रयास करते रहेंगे। जबकि विकासशील देशों को शीघ्रातिशीघ्र उत्सर्जन सीमा चरम पर पहुँच कर उत्सर्जन कम करने के लिए त्वरित प्रयास करने होंगे।। समझौते में उत्सर्जन कम करने और सिंक के माध्यम से उसका निष्कासन पर बराबर का ज़ोर दिया गया है जिसकी वजह से विकसित देशों में 'ऊर्जा उत्पादन और उपयोग' और 'जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कमी' में तात्कालिक कमी पर कम ध्यान दिया गया है। बल्कि व्यवसायिक लाभ के लिए ऐसे समाधानों को बढ़ाने का अवसर प्रदान किया है जिनकी विश्वसनीयता पर सवाल हैं।

इस समझौते में समता और न्याय का न होना बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। समझौते में कुछ भी बाध्यकारी नहीं है, विकसित देश सहित सभी देशों को छूट है कि वह इच्छानुसार लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करें। समझौते में केवल देशों के राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (आईएनडीसी) पर बात हुई है। समझौता 100 बिलियन डॉलर के जलवायु वित्त जुटाने में भी असफ़ल रहा है, जो कि स्वयं संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार से अपर्याप्त है। यह जलवायु वित्त देखा जाए तो बहुत कम है। प्रति वर्ष 5000 बिलियन डॉलर से अधिक जीवाश्म ईंधन की सब्सिडी में जाता है जो इस जलवायु

वित्त की तुलना में बहुत कम है। समझौते में नौवहन और विमानन से होने वाले उत्सर्जन को शामिल नहीं करने पर भी लोग नाराज़ रहे क्योंकि पिछले कई सालों में इस क्षेत्र में काफ़ी प्रयास हुए थे कि किस तरह इससे होनेवाले उत्सर्जन पर रोक लगाई जा सकती है।

क्या क्योटो की राह चलेगा अमरीका ?

विकसित देशों को अमरीका के दबाव के कारण कई रियायतें प्राप्त हुई हैं। अमरीका के मुख्य वार्ताकार टोड स्टार्न ने अपने प्रस्तावों के शामिल न होने पर समझौते से बाहर होने की धमकी दी थी। भाषा के स्तर पर भी कई बदलाव किए गए हैं। समझौते के काफ़ी प्रावधानों को बाध्यकारी से बदलकर स्वेच्छानुसार कर दिया गया है। भारत और चीन का प्रस्ताव था कि विकसित और विकासशील देशों के लिए दो अलग मूल्यांकन प्रणालियाँ बनाई जाएँ, लेकिन अमरीका के दबाव पर इसे भी स्वीकार नहीं किया गया। अमरीका के लिए कांग्रेस से यह समझौता पारित करवाना मुश्किल होगा। आने वाले राष्ट्रपति चुनाव के बाद यह समस्या बनी रहेगी, क्योंकि भले ही डेमोक्रेट जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंतित हैं लेकिन दूसरा समूह रिपब्लिकन्स जलवायु परिवर्तन की संकल्पना को नकारते हैं। ऐसे में अगर रिपब्लिकन्स जीत जाते हैं तो इस समझौते को पारित करवाना बहुत मुश्किल होगा, और कहीं ऐसा न हो कि क्योटो वाली स्थिति आ जाए। ■

खबर

यह खेती कभी धोखा नहीं देती

– आलोक प्रकाश पुतुल

इस साल छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के कई इलाके सूखे की मार झेल रहे हैं। मगर दोनों राज्यों में रहने वाले बैगा और पहाड़ी कोरवा आदिवासियों के माथे पर शिकन तक नहीं। ये आदिवासी सदियों से बेवर खेती करते रहे हैं। बेवर खेती यानी ज़मीन जोते बिना उसमें 56 तरह के पारंपरिक बीजों के सहारे खेती। मौसम की मार से दूर इस खेती से हर हाल में इतनी तो उपज हो ही जाती है कि गुज़ारा चल जाए। आधुनिक तरीके से की जाने वाली खेती में फ़सलें भले एक बार धोखा दे दें, पर बेवर खेती कभी भूखा नहीं रहने देती।

मध्य प्रदेश के डिंडौरी ज़िले के बैगाचक इलाके में नान्हूं रठूरिया से अगर आप बेवर खेती के बारे में पूछें, तो वह बिना रुके आपको ऐसे कई कारण बता सकते हैं, जिससे आप खेती के इस तरीके से सहमत हो जाएँगे। नान्हूं रठुरिया बताते हैं, 'हम खेत जोतते नहीं हैं। छोटी-बड़ी झाड़ियों को जलाया और फिर आग ठंडी होने पर वहीं ज़मीन पर कम से कम 16 अलग-अलग तरह के अनाज, दलहन और सब्जियों के बीज लगा दिए। इनमें वो बीज हैं, जो अधिक बारिश हुई तो भी उग जाएंगे और कम बारिश हुई तो भी फसल की गारंटी है। इस खेती में न खाद की ज़रूरत होती है और न महंगे कीटनाषकों की।'

घने जंगलों में रहने वाले इन गाँवों में मौसम विभाग की भविष्यवाणी नहीं पहुँचतीं। गाँव में घुर्घूटी कीड़ा निकले, तो मान लें कि इस साल खूब बारिश होगी। ऐसे में उन बीजों की मात्रा बढ़ा दी जाती है, जो अधिक बारिश में भी खूब फसल दें। इसी तरह मौसम को जानने-समझने के कई पारंपरिक तरीके चलन में हैं, जो कभी ग़लत नहीं साबित होते। इसके अलावा ये आदिवासी मौसम आधारित पारंपरिक कंद-मूल तो लगाते ही हैं। ये वो कंद-मूल हैं, जिन्हें खाकर पर्याप्त पोषण तो मिलता ही है, तरह-तरह की बीमारियों से भी छुटकारा मिलता है।

सिलपिड़ी गाँव की सोमारी बाई कहती हैं, 'किसी को बुखार हो जाए या पेटदर्द हो तो हम कडूगीठ कांदा या बेचांदीकांदा खाकर इन बीमारियों से लड़ लेते हैं। किसी को बिच्छू ने काट लिया तो रबीकांदा पीसकर लगा दें। कैसा भी ज़हर हो, उतर जाएगा। महिला का प्रसव हो तो डोनची कांदा खिलाना अनिवार्य है। इस कांदा को खाकर प्रसूता दूसरे दिन से काम पर लौट जाती है।'

बिजली दैहान टोला की सुन्नी बाई से अगर आप पूछें तो बिना साँस लिए वे कई तरह के कंद के नाम बता देंगी। रही-सही कसर उनकी दूसरी सहेलियाँ पूरी कर देती हैं - 'सैदूकांदा, ढुरसीकांदा, बैचांदीकांदा, लोडंगीकांदा, कनिहाकांदा, डोनचीकांदा, रबीकांदा, ढुरसीकांदा, बड़ाइनकांदा, तिखुरकांदा, कडुगीठकांदा, बिराड़कांदा...।' वहीं पास खड़े चर्रा सिंह रठुरिया सोच-सोचकर कई साग-भाजी का नाम बताते जाते हैं, 'केवलार भाजी, पीपर भाजी, अमला भाजी, लमेर भाजी, चिरौती भाजी, चरौटा भाजी, कच्छर भाजी, अकोती भाजी, तिनसा भाजी, करैया भाजी, कोंजियारी भाजी, कुसुम भाजी, गिरुल भाजी, ककती भाजी..।'

बैगा महापंचायत के नरेश बिश्वास का कहना है कि पारंपरिक रूप से की जाने वाली बेवर खेती खाद्य सुरक्षा की गारंटी भी देती है और पोषण की भी। इससे ज़मीन की उर्वरा शक्ति भी बनी रहती है क्योंकि बेवर खेती के लिए हर तीसरे-चौथे साल नई ज़मीन चुनी जाती है। बिश्वास कहते हैं, 'जंगल में मिलने वाले कम से कम 24 तरह के पत्ते और फूल और 25 तरह फलों की सब्जी बैगा आदिवासियों के भोजन का हिस्सा हैं। मशरूम की लगभग 50 प्रजातियाँ हैं, जिन्हें बैगा और कोरबा आदिवासी खाते हैं। कंद-मूल की तो जाने ही दें। हम कथित सभ्य और आधुनिक समाज के लोगों को इस विविधता का न तो ज्ञान है, न अनुमान, न पहचान!'

कृषि वैज्ञानिक डॉक्टर संकेत ठाकुर भी बताते हैं कि देश की विभिन्न जनजातियों ने हमेशा से बहुफ़सली खेती को ही बढ़ावा दिया। इससे एक तो खरपतवार नहीं आते और कीट नियंत्रण में इससे आसानी होती है। किसी खेत में अगर कोई ख़ास किस्म का कीड़ा लगता है तो वह चार में से किसी एक ही फ़सल को नुक़सान पहुँचाता है। यानी शेष बची तीन फ़सलें कीटों से पूरी तरह से सुरक्षित रह जाती हैं। डॉक्टर संकेत ठाकुर कहते हैं, 'आज वैज्ञानिक कह रहे हैं कि खाने के लिए एक ही तरह के तेल या दलहन का उपयोग नहीं करना चाहिए। लेकिन इस बात को हमारी जनजातियों ने सदियों पहले से जान-समझ लिया था। उनके भोजन की विविधता चकित करने वाली है।'

बेवर खेती की खास बातें

ब्रिटिश सरकार ने जंगल की कटाई का हवाला देते हुए आदिवासियों की पारंपरिक बेवर या झूम खेती पर प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन मध्य प्रदेश के डिंडौरी ज़िले के सात गाँवों को 2,336 एकड़ इलाके में इस खेती की छूट थी। भारतीय वन कानून बनने के बाद 1927 में यह छूट वापस ले ली गई लेकिन बेवर खेती की परंपरा तमाम प्रतिबंधों के बाद भी आज तक जारी है। मध्य प्रदेश के डिंडौरी में बैगा आदिवासी और छत्तीसगढ़ के कोरबा में पहाड़ी कोरबाओं ने खेती की इस परंपरा को बचाए और बनाए रखा है।

(बीबीसी हिंदी डॉट कॉम से साभार)

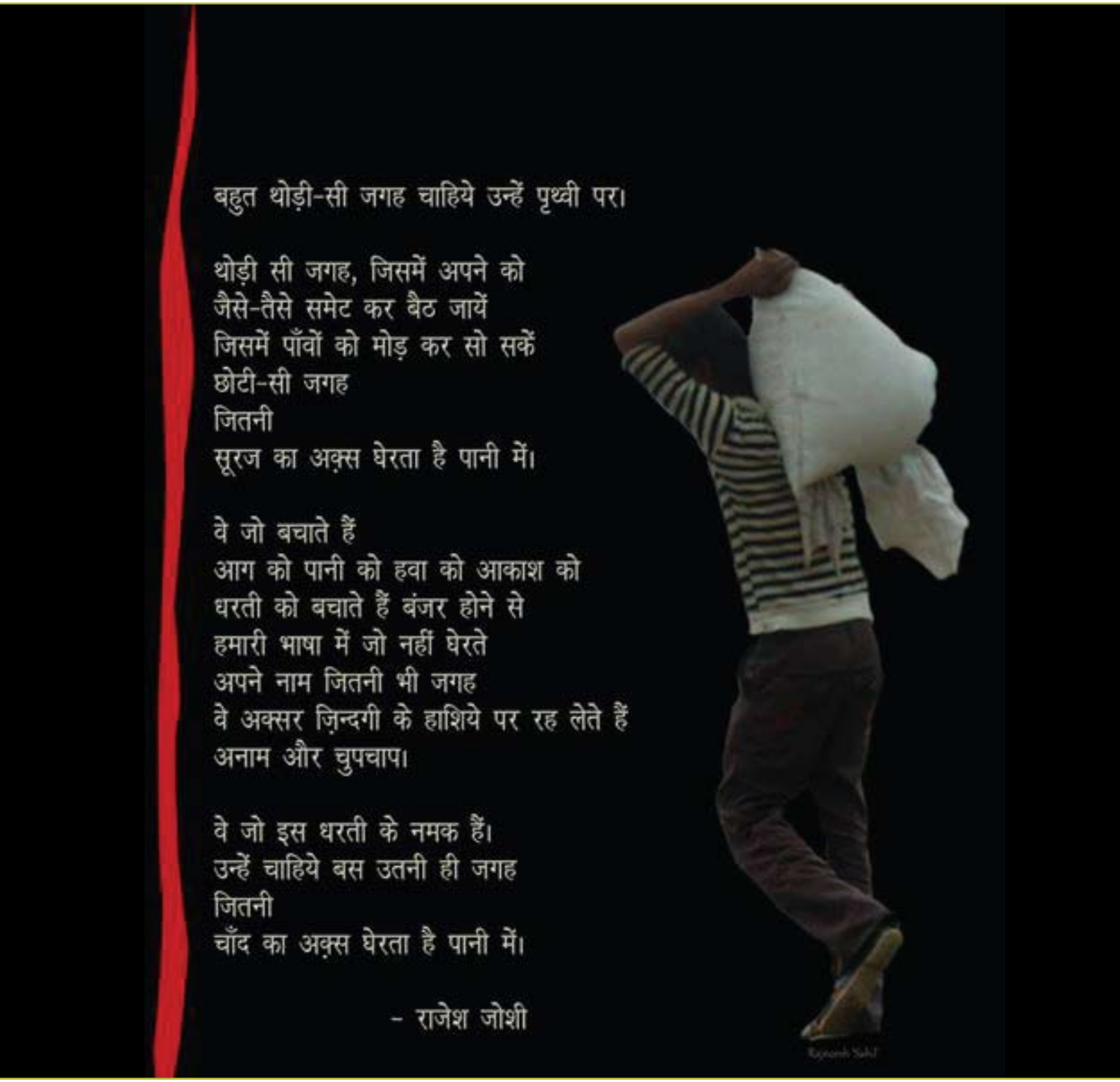

प्रति,

_____

_____

_____

_____

बुक पोस्ट

पैरवी, जी-30, प्रथम तल, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024 द्वारा सीमित प्रसार के लिए प्रकाशित
फोनः 011-29841266, 65151897 | ईमेलः pairvidelhi@rediffmail.com, pairvidelhi1@gmail.com | वैबसाइटः www.pairvi.org